

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176145

UNIVERSAL
LIBRARY

प्रकाश-चिकित्सा

लेखक

डा० सुधीर कुमार मुकर्जी, एम० एस-सी०, डी० फिल०

प्रयाग

प्रयाग विश्वविद्यालय

१९३८

पूर्वकथन

लगभग छः वर्ष हुए प्रयाग विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के अध्यक्ष डा० नीलरत्न धर महोदय ने 'न्यू कन्सेपशन्स इन बायोकेमिस्ट्री' नामक एक पुस्तक लिखी थी जिसे प्रयाग के इण्डियन इग हाउस ने प्रकाशित किया है। डा० धर ने अपने प्रयोगों द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि सामान्य तापक्रम पर ही शरीर में वायु द्वारा खाद्य पदार्थों का किस प्रकार ओषदीकरण होता है। आप का विचार है कि सूर्य के प्रकाश की विद्यमानता में शरीर की पाचनशक्ति बढ़ जाती है और खाद्य पदार्थों का ओषदीकरण भी बढ़ जाता है। भोजन के ठीक न पचने से बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इन रोगों के निवारण में सूर्य के प्रकाश से बहुत सहायता मिलती है। डा० धर की अपनी सम्मति यह है, कि सूर्य का प्रकाश इन रोगों में इसलिये लाभकर है कि इसकी विद्यमानता में भोजन ठीक रूप से पचता है। विटामिनों और अनेक ग्रन्थियों के अन्तःस्रावों का भी लाभकर प्रभाव इसी कारण है कि उनकी उपस्थिति में खाद्य पदार्थों का ओषदीकरण ठीक प्रकार से होता है।

इस छोटी सी पुस्तिका में डा० धर के सुयोग्य शिष्य डा० सुधीर कुमार मुकर्जी ने डा० धर की उक्त पुस्तक के दो अध्यायों

का अनुवाद प्रस्तुत किया है। इस पुस्तिका के पूर्वार्ध में प्रकाश द्वारा रोग-चिकित्सा का विवरण दिया गया है। प्रकाश द्वारा विटैमिनों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, इस बात की भी शास्त्रीय मीमांसा की गई है। पुस्तिका के उत्तरार्ध में उन रोगों की मीमांसा की गई है जो भोजन की हीनता के कारण होते हैं। उन रोगों का प्रकाश और विटैमिनों द्वारा किस प्रकार निवारण होता है, यह भी बताने की चेष्टा की गई है।

डा० मुकर्जी ने यह अनुवाद अपनी 'एम्प्रेस-विक्टोरिया रीडर-शिप' नामक छात्र वृत्ति की अवधि में किया है जिसके लिये वे प्रयाग विश्वविद्यालय के कृतज्ञ हैं।

हमें पूर्ण आशा है कि इस पुस्तिका से हिन्दी-भाषियों का बड़ा उपकार होगा, जिसके लिए हम डा० मुकर्जी के ऋण रहेंगे।

कला कुटीर
बेली रोड, प्रयाग
२२-२-३८

सत्यप्रकाश

पूर्वाङ्ग

वर्तमान काल की प्रकाश-चिकित्सा का जन्म-दाता फिनसेन^१ कहा जा सकता है। उसने इस महान कार्य को सन् १८९३ ईसवी में आरम्भ किया था। इस कार्य में उसे बड़ी सफलता मिली और उसने ल्यूपस (Lupus) जो एक चर्म रोग है इसी से अच्छा किया। इस रोग का अच्छा होना बड़ा कठिन समझा जाता था। इस रोग के १२०० रोगियों में से ११०० रोगियों को बहुत लाभ हुआ। रोलियर^२ ने भी इस कार्य में बड़ी उन्नति की और लैसिन^३ में एक चिकित्सालय तपेदिक के रोगियों की प्रकाश से चिकित्सा करने के लिये खोल दिया। जब से वहाँ इस रोग की चिकित्सा में बहुत लाभ हुआ है, तभी से प्रकाश-चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र का एक अंग हो गयी है। फिनसेन और रोलियर दोनों व्यक्तियों ने इस लाभ का कारण सूर्य के प्रकाश में पराकासनी किरणों का होना बताया है। प्रकाश-चिकित्सा से आल्प्स पर्वत पर अधिक लाभ हुआ। पर यह इस कारण से नहीं कि वहाँ पराकासनी किरणें अधिक थीं किन्तु इसका कारण यह था कि पर्वत पर की बर्फ उष्ण किरणों को अत्यधिक सोख लेती है और पराकासनी किरणों को बिखेर देती हैं। ६००० फुट की ऊँचाई पर किरणें समुद्र की

-
1. Finsen
 2. Rollier
 3. Leysin

सतह से डेढ़ गुनी अधिक रहती हैं। इस बात की आवश्यकता नहीं रहती, कि सीधे सूर्य की किरणों में रोगी को रक्खा जाय क्योंकि आकाश में छिटके हुये प्रकाश से यथेष्ट पराकासनी किरणें मिल जाती हैं।

मनुष्य शरीर पर पराकासनी प्रकाश का जो प्रभाव पड़ता है उसका अनुसन्धान करने के लिये कार्ट्ज़-पाराकासनी प्रकाश पारद-दीपक बहुत सुविधा जनक है। इस बात के सिद्ध हो जाने से कि पराकासनी प्रकाश रोग के लिये विशेष लाभदायक है, इसका प्रयोग दिन पर दिन बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि पराकासनी-पारद-दीपक का व्यापार भी बढ़ गया है।

आजकल दो प्रकार के दीपक काममें आ रहे हैं—वायु से ठंडा होने वाला 'सूर्य-दीपक' और दूसरा पानी से ठंडा किया हुआ दीपक। हवा से ठंडे किये हुये लैम्प के प्रकाश में * ३००० अँ

* 'अँ' स तात्पर्य आंगस्ट्रम इकाई से है। यह प्रकाश की लहरों की लम्बाई नापनेकी एक माप है। भिन्न-भिन्न रंगों की किरणों की लम्बाई इस प्रकार है—

पराकासनी	—	१८१० से ३६०० अँ तक
कासनी	—	३६०० से ४२४० अँ तक
नीला	—	४२४० से ४६२० अँ तक
हरा	—	४६२० से ५३५० अँ तक
पीला	—	५३५० से ५८६० अँ तक
नारंगी	—	५८६० से ६४७० अँ तक
लाल	—	६४७० से ७५०० अँ तक

से बड़ी किरणों की मात्रा बहुत होती है और पानी से टंडा किये हुये लम्प के प्रकाश में ३००० आँ से छोटी किरणों की मात्रा बहुत होती है और उनकी चमक बहुत तेज होती है ।

किसके ऊपर किस प्रकार का प्रभाव इस प्रकाश-चिकित्सा का पड़ता है, यह भी विचित्र है । गोरे मनुष्य के ऊपर प्रभाव अधिक पड़ता है, काले मनुष्य पर कम । पुरुषों पर कम और स्त्रियों पर अधिक । बूढ़ों की अपेक्षा जवानों पर अधिक पड़ता है । जो भाग सदा ढका रहता है उस पर भी प्रभाव अधिक पड़ता है । कभी कभी शरीर के सब अंगों को एक साथ ही किरणों के सामने नहीं रखते किन्तु बारी बारी से रखते हैं और जो अंग एक बार किरण सोग्व चुका है उसको दुबारा प्रकाश अधिक समय तक दिया जा सकता है ।

इस पराकासनी किरणका प्रभाव आँख पर अधिक पड़ता है ।

एलिस और वेल्स^१ ने बड़े साहस का एक प्रयोग किया । वे बिना किसी परदे या रोक के पराकासनी किरणों के सम्मुख बैठे और किरणोंके प्रभावका उन्होंने अनुभव किया ।

इनके ऊपर किरणें ३००० 'कैंडिल पावर' वाली डाली गयीं । ये १६ या २० इंचकी दूरीपर आध घंटे तक बैठे रहे । बारी बारांसे शिर और शरीर पर प्रकाश डाला गया । कुछ ही काल पीछे शरीर गरम हो गया और विचित्र प्रकार की सनसनाहट शरीर में ज्ञात होने लगी ।

शरीर पर लाल लाल चकते पड़ गये जो तीन दिन पीछे जाकर मिटे। शरीर की त्वचा कड़ी पड़ गई किन्तु छाले नहीं पड़े और कुछ समय बाद नया चर्म प्रगट हुआ जो लचीला और भूरा था। रोगी दो घंटे में लाल होगया। शरीर फूल गया मगर कुछ ही दिन बाद अच्छा होगया। शरीर में नयी स्फूर्ति आगई, और शक्ति ज्ञात होने लगी। इसका प्रभाव अच्छे शरीर पर और अच्छा पड़ेगा।

हिल^१ साहेब कहते हैं कि यदि सूर्य की किरण किनीन

सल्फेटके घोलसे छनकर आये तो ४२००

एरीथिमा रोग आँ से छोटी किरणों को घोल सोख लेगा।

यदि चर्मको पानी के प्रवाहसे ठंडा रक्खा

जाय तो इस छनने हुये प्रकाश से एरीथिमा नहीं होगा। सम्भवतः

एरीथिमा पराकासनी किरणों के कारण होता है। हिल साहेब अपने

अनुसन्धानों से यह अनुमान करते हैं कि सूर्य के प्रकाश में

एरीथिमा उत्पादक किरणें ३३००—३००० आँ के बीच की हैं।

एसीटोन मिथाइलीन ब्लू के फीके पड़ने और एरीथिमा उत्पन्न

होने में भी कुछ सम्बन्ध मालूम होता है। हाँसर और

वाहले^२ साहेब का कार्य बहुत ठीक जान पड़ता है। उन्होंने

थरमोपाइल से प्रकाश की घनता को नाप कर यह पता

लगाया है कि एरीथिमा उत्पादक किरणें जो पारद-वाष्प-लैम्प से

1. Hill

2. Hausser and Vahle

निकलती हैं सब से अधिक २९६७ ऑ वाली हैं । ३१३१ ऑ लम्बाई की किरणों से २९६७ का ४'५ प्रति सैकड़ा एरीथिमा होता है परंतु सूर्य के प्रकाश में इसी किरण का बाहुल्य है । सूर्य की वे किरणें जो सूखा अच्छा करती हैं और विटेमिन-डी बनाती हैं, ३२००—२९०० ऑ के बीच की हैं ।

आज कल चिकित्सा शास्त्रमें प्रकाश-चिकित्सा का क्या स्थान है, यह 'स्काटिश बोर्ड ऑफ् हेल्थ' की इस प्रकाश चिकित्सा विज्ञप्ति से पता चलता है । उसमें कहा है कि 'जब शरीर की वृद्धि कम हो जाती है या पोषण ठीक नहीं होता, कोई न कोई उपाय करना पड़ता है । पराकासनी किरणों के द्वारा चिकित्सा करना एक नई प्रणाली है । इस चिकित्साका क्षेत्र कितना विस्तृत है, अभी ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता । परन्तु अनुसंधान से पता चला है कि इसका प्रयोग शरीर की नियमित वृद्धि के लिये हो सकता है । इसके प्रभाव से वजन बढ़ जाता है, वृद्धि की गति बढ़ जाती है, रक्त में लवणों की मात्रा बढ़ जाती है, ग्रन्थियों के कार्यमें उन्नति हो जाती है और शरीरमें कीटाणुओं के मारने की शक्ति बढ़ जाती है । इतना होने पर भी स्वस्थ शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । जिस जिस रोगीकी चिकित्सा की गयी, उसने इसके प्रभाव को आशाजनक पाया और उसके शरीर की व्यथा भी दूर होती प्रतीत हुई ।'

क्रूकशेङ्क और वाट' यह बताते हैं कि प्रकाशसे कुटेनस तन्तु बढ़ जाते हैं और पसीने वाली गिल्टियाँ शक्तिमान हो जाती हैं ।

छोटी किरणों को शरीर के पतले चमड़े, जो एपीडरमिस कहाते हैं, सोख लेते हैं । परन्तु लम्बी शरीरचर्मकी भेदकता किरणों शरीरके भीतर गहराई तक जाती हैं । नीचेकी तालिकासे इसका पता ठीक ठीक चलता है कि कौन सी किरणें चर्ममें कितनी अन्दर चली जाती हैं ।

किरण की लम्बाई (आंग्स्ट्रम इकाईमें)	प्रतिशत भेदकता	
	०.१ मि०मी० मोटा चर्म	१ मि०मी० मोटा चर्म
४३६०	५९	०.५
४०५०	५५	०.३
३६६०	४९	०.०८
३५४०	४२	०.०२
३१३०	३०	—
३०१५	४	—
२९९०	२	—
२९७०	०.०१	—

प्रयाग विश्वविद्यालयकी रसायनशालामें डा० धर और डा० पालितने वायु द्वारा भोजन-पदार्थोंके पाचन पर प्रकाशका प्रभाव ओषदीकरण पर बहुतसे प्रयोग किये हैं । खोजोंके आधार पर उन्होंने यह परिणाम निकाले हैं कि जब शरीर प्रकाश को सोख लेता है तो शरीरमें पाचन क्रिया बढ़ जाती है । मनुष्य भला चंगा प्रतीत होता है । सूर्यका प्रकाश ऊपरकी त्वचासे छन कर अन्दर प्रविष्ट होता है और शरीरके अवयवों को प्रभावित कर देता है । इससे शक्कर, प्रोटीन आदि भोज्य-पदार्थोंका पाचन उत्तेजित हो जाता है । जितने भी रोग हैं वे सब भोजन के ठीक न पचनेके कारण ही उत्पन्न होते हैं । अतः यह स्पष्ट है कि इन रोगों पर प्रकाशका अच्छा प्रभाव पड़ेगा ।

डा० धर और सान्याल ने प्रयोगों से यह दिखलाया है कि बहुत से मद्य (दारीलमद्य, ज्वलील मद्य), प्रोटीन, चर्बी इत्यादि और ग्लिसरीन इत्यादि पदार्थ प्रकाश का वायु से ओषदीकरण में केवल वायु से ओषदीकृत हो जाते हैं । डा० धर और डा० पालित साहेब ने अनेक पदार्थों का ओषदीकरण प्रकाश द्वारा सुचारु रूप से किया है । उन्होंने यह दिखलाया है कि नाना प्रकार के शर्करामय पदार्थ, ग्लिसरीन, मूत्रिया (यूरिया), मधुन (ग्लाइसिन), अश्वमूत्रिकाम्ल (हिप्पूरिक ऐसिड), अ-रेशमिन

(अ-अलेनिन), सैन्धक मूत्रेत, पांशुज पामीटेत, स्टीरेत, ओलियेत, सैन्धक पिपीलेत, इमलेत, काष्ठेत, और कौलेस्टरोल एवं, मक्खन, दूध अंडा इत्यादि प्रकाश में वायु से ओषदीकृत हो जाते हैं । उनके प्रयोग फल नीचे दिये जाते हैं ।

पदार्थ जो काम में लाये गये	पदार्थ की मात्रा	पदार्थ की मात्रा जो जल गयो	प्रतिशत
ऐरेबिनोज	० १००० ग्राम	०.००७५ ग्राम	७.५
दुग्धस्योज	० ०८६१	० ००६७	७.८
इक्षु शर्करा	० ०९६४	० ००९८	१०.२
द्राक्षशर्करा	०.०९६२	०.०१४४	१४.९
उत्तरोज	० ०९१८	०.०१५९	१७.३
दुग्धोज	० ०९७७	०.०१९७	१९.७
यवोज	० १०९७	०.०२८५	२५.९
नशास्ता	०.१०२७	०.०३९९	३८.८
मधुकोजन	०.०७८७	०.०१९५	१९.७
मधुरोल	०.२५००	०.०४५	१८.०
मूत्रिया	०.२०००	०.०१७५	८.७
मधुन	०.०९९९	०.०.९६	९.६
अ-रेशमिन	०.०९९७	० ०३६५	३६.६
अश्व-मूत्रिकाम्ल	०.०४८३	० ००६९	१४.२
सैन्धक मूत्रेत	०.०४२०	० ००८२	१९.६
सैन्धक इमलेत	०.०९८९	०.०६७९	३१.३
सैन्धक पिपीलेत	० ०७३७	०.०१४६७	१९.९

उन लोगों ने यह भी पता चलाया है कि दस्त-ओषिद (जिंक या यशद धातु का), पिनाक नोषेत और लोह नोषेत की उपस्थिति में ओषदीकरण बहुत बढ़ जाता है । द्राक्षशर्करा, दुग्धोज, और अ-रेशमिन के ओषदीकरण में आइन्सटाइन का प्रकाश रासायनिक नियम लागू होता है अर्थात् प्रकाश की एक क्वाण्टम मात्रा से इन पदार्थों का एक अणु ओषदीकृत होता है । पर मधुन में प्रकाश की एक क्वाण्टम मात्रा से ७ अणु ओषदीकृत हो जाते हैं । ऊपर लिखी हुई सब वस्तुएँ पूर्ण रूप से ओषदीकृत हो जाती हैं, और पानी और कर्बन द्विओषिद बन जाता है । बीच की अन्य कोई वस्तु नहीं बनती । अतः यह स्पष्ट है कि प्रकाश से ओषदीकरण जिसपर जीवन निर्भर है, बढ़ जाता है । डा० धर और डा० पालित साहेब ने अंडा, नशास्ता, मक्खन, चीनी इत्यादि के ओषदीकरण पर भी कार्य किया है । उनके परिणाम नीचे दिये जाते हैं ।

अंडे की जर्दी	६०.९ प्रतिशत
अंडे की सफेदी	३१.२५
नशास्ता	३८.२
मक्खन	३१.८
द्राक्षशर्करा	१३.६
चीनी	७.८
मधुकोजन	७.५

इससे यह पता चलता है कि अंडे की जर्दी धूप में शीघ्रता

से ओषदीकृत हो जाती है। चीनी की अपेक्षा मक्खन शीघ्र ही ओषदीकृत हो जाता है। यह ओषदीकरण शरीर के ओषदीकरण की ही भाँति होता है और वायेट^१ ने ऐसा ही ओषदीकरण पशुओं के शरीर में देखा है। इन फलों के आधार पर कहा जा सकता है कि सम्भवतः रोगों पर प्रकाश चिकित्सा के लाभ-प्रद कार्य का कारण पाचन-शक्ति का बढ़ जाना है। डा० धर साहेब ने यह बात अच्छी तरह से बता दी है कि प्रकाश का प्रभाव ऐसे २ रोगों में हितकारी होगा :—सूखा, बेरी बेरी, ओस्ट्रोमेलेशिआ, पेलागरा, मधुमेह, रक्तहीनता और नासूर इत्यादि। इन रोगों का प्रकोप भारत और चीन में बड़ी उग्रता से होता यदि भोजन की कमी को पूरा करने वाला सूर्य का प्रकाश इन प्रदेशों में न होता।

पिन्कुसेन^२ ने खरगोशों के ऊपर किये गये प्रकाश-चिकित्सा वाले प्रयोग में यह देखा कि प्रोटीन का पाचन प्रकाश में बढ़ गया जिसके प्रमाण-स्वरूप मल में नोपजनीय पदार्थों का अधिक मात्रा में निकलना था।

इसके अतिरिक्त डा० धर साहेब ने मधुमेह की चिकित्सा में प्रकाश को बहुत लाभदायक पाया है। शक्कर के ठीक न पचने से मधुमेह हो जाता है। यद्यपि सैम्पसन^३ साहेब का यह विश्वास है कि पराकासनी प्रकाश का मधुमेह पर कोई

-
1. Carl von Voit
 2. Pincussen
 3. Sampson

प्रभाव नहीं पड़ता, फिर भी वह स्वीकार करते हैं कि दूसरे लोगों का अनुभव इसके विपरीत है। बाच^१ साहेब ने 'डायबेटिक गैंग्रीन' की चिकित्सा में प्रकाश का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है।

चिकित्सा शास्त्र में इस प्रकाश-चिकित्सा का क्या सापेक्ष महत्व है उसके संबंध में एलिस और वेल्स साहेब लिखते हैं कि "पराकासनी प्रकाश से शरीर झुलस जाने के बदले जले पर लाभ होता है और झुलसा हुआ भाग अच्छा हो जाता है। पराकासनी प्रकाशकी बहुत सी बातें ठीक ठीक समझमें नहीं आतीं। ओषधि के सम्बन्ध में भी यही बात है। मलेरिया में कुनीन, गर्मी में पारा, क्लोरोसिस में लोहा, दस्त में इपीकाकान्हा और अन्य रोगों की अनेकों ओषधियाँ जो प्रयोग में लायी जाती हैं वे खोज द्वारा पुस्तक में नहीं आयीं किन्तु अचानक उनका पता चल गया है। ज्योतिषी, जादूगर और जंगली लोगों ने अटकल से कुछ ओषधियों का प्रयोग चला दिया है।"

हुल्डशिन्स्की^२ ने इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि

सूखा की बीमारी में प्रकाश चिकित्सा से

✓ प्रकाश से विटैमिनों

का बनना

बहुत लाभ होता है। यह प्रकाश पारद

लैम्प से निकला हुआ होना चाहिये। हेस

और उनजर^३ ने यह बताया है कि जैसे

1. Bach

2. Huldshinsky

3. Hess and Unger

जैसे सूर्य का प्रकाश घटता बढ़ता है, वैसे वैसे मिठवा का रोग भी घटता बढ़ता है। हेस और उनके साथियों ने यह पता चलाया है कि यदि रोगी को विटामिन ए-और-बी रहित भोजन दिया जाय और यदि सूर्य की किरणें उस पर पड़ती रहें तो उसको सूखा नहीं होता। हुल्डशिन्स्की के कार्य के अनुसार और हेस और उनके सहयोगियों तथा कुमारी चिक^१ के कार्य के अनुसार यह सिद्ध हो गया है कि क्वार्ट्ज-पारद-वाष्प-लैम्प से निकले पराकासनी प्रकाश से सूखा उसी प्रकार अच्छा हो जाता है जैसे मछली के तैल इत्यादि सूखा को दूर करने वाले भोजन देने से होता है। दूसरे, इन किरणों से उन पशुओं की जिनके भोजन में विटामिन-ए का अभाव था शारीरिक वृद्धि नियमानुसार होती रहती है। कुमारी ह्यूम और स्मिथ^२ ने यह देखा है कि यदि चूहे शीशे के बर्तन में बंद कर के किरणों के सामने १३ सैकेंड तक एक एक दिन छोड़ कर रक्खे जायँ तो उन चूहों की अपेक्षा जिनको उपयुक्त भोजन नहीं मिलता, इनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

इसके कुछ ही दिन बाद स्टीनबोक और ब्लैक^३, स्टीनबोक और नेलसन^४ ने यह पता चलाया कि उन खाद्य पदार्थों में

-
1. Miss Chick
 2. Miss Hume and Smith
 3. Steenbock and Black
 4. Nelson

जिनमें विटामिन कम रहता है धूप में रखने से मज्जा बनाने की शक्ति आ जाती है। हेस और वाइनस्टोक^१ कोलेस्टेरोल और भी इसी बात की पुष्टि करते हैं। इस तरह विटामिन का संबंध से, धूप में रखने से बहुत से खाद्य पदार्थ जैसे गेहूँ, मांस, दूध, अंडा, तैल आदि का प्रभाव बढ़ाया जा सकता है। बहुत से वैज्ञानिकों के मतानुसार प्रकाश के प्रभाव से खाद्य पदार्थों में ऐसे उत्तेजक पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं, जो इनमें पहले न थे। यह पहले पहल तैलों और अन्य मज्जिक पदार्थों में देखा गया कि प्रकाश में रखने से इनमें स्टेरोल, फाइटोस्टेरोल और कोलेस्टेरोल बन जाते हैं। कुछ ही दिनों बाद ड्रमण्ड^२ ने यह देखा कि मछली के तैल को जिसमें विटामिन-ए और-डी बहुत हैं वायु से बचा कर गरम दाहक पोटैश से उद्विश्लेषित करने से विटामिन तैल के उस भाग में, जिसका साबुन नहीं बन सकता, इकट्ठा हो जाते हैं। यह तैल का सौवां भाग होता है। तैल के भूरे भाग का विटामिन ज्यों का त्यों अलग किया जा सकता है। इसकी मात्रा ०.८ प्रतिशत होती है। इससे यह पता चला कि विटामिन कोलेस्टेरोलसे मिलता जुलता है। किंतु कोलेस्टेरोल स्वयं क्रियावान् नहीं है। एक और बात का पता चला था कि यदि कोलेस्टेरोल मस्तिष्क से निकाला जाकर भली प्रकार साफ किया जाय और प्रकाश में

1. Weinstock

2. Drummond

रक्खा जाय तो उसमें सूखा को अच्छा करने की शक्ति जो पहले न थी उत्पन्न हो जाती है ।

हेस और वाइनस्टोक ने इस बात का पता लगाया कि यदि कोलेस्टेरोल और फाइटेस्टोरोल पराकासनी प्रकाशमें रक्खे जायँ तो इनमें बहुत अंतर पड़ जाता है । इनमें मोमी पदार्थ बन जाते हैं जिनका द्रवणांक पहले के पदार्थों से बहुत ही कम है । यह रूपान्तर उसी प्रकार का है जैसा कि शुल्जे और विण्टरस्टाइन^१ ने पाया था । रोज़नहाइम और वेबस्टर^२ ने यह दिखाया है कि ओषजन की उपस्थिति और अनुपस्थिति दोनों में सूखा उत्पन्न हो जाता है । हेस, वाइनस्टोक और शेरमन^३ यह बताते हैं कि ओषजन की उपस्थिति में प्रकाशमें रखने पर इस क्रियावान् पदार्थ का ओषदीकरण हो सकता है और फलतः सूखा दूर करने वाले पदार्थ कम मात्रा में बनेंगे ।

चैनन^४ के प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध होता है कि पशु के पेटमें कोलेस्टेरोल बनाने की शक्ति है । गार्डनर और फाक्स^५ साहबके प्रयोगोंसे भी यही बात सिद्ध होती है । कोलेस्टेरोल और उसी जाति के अन्य स्टेरोलों पर पराकासनी किरणों के प्रभाव का अध्ययन

-
1. Schulze and Winterstein
 2. Rosenheim and Webster
 3. Sherman
 4. Channon
 5. Gardner and Fox

इतना किया जा चुका है कि यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि प्रकाश में रखने से इन पदार्थों में सूखा दूर करने वाले पदार्थ उत्पन्न होने हैं। अभी थोड़े वर्षों से इस बात का पता अच्छी तरह चल गया है कि कोलेस्टेरोल इतना कार्य नहीं करता किंतु उसके साथ मिला हुआ कोई अन्य पदार्थ है जो उसमें विटामिन-डी पैदा करता है। रोज़नहाइम और वेन्स्टर साहब द्वि-अरुणिद से उत्पन्न की हुई कोलेस्टेरोल को पराकासनी प्रकाश से उत्तेजित नहीं करा सके। यह कहा जाता है कि प्रो-विटामिन भिन्न भिन्न वस्तुओं के प्रभाव से नष्ट हो जाता है। शुल्त्ज़ और जीग्लर^१ साहब के प्रयोगों के दुहराने पर हाइलब्रान, काम और मोर्टन^२ ने स्पेक्ट्रोग्राफ से दिखलाया है कि साफ किए हुए कोलेस्टेरोल में एक अन्य वस्तु भी रहती है जो ज्वलील सिरकेत^३ में कम से कम घुलने वाले भाग में रवा बनाने पर इकट्ठा हो जाती है। इस पदार्थ की शोषक-पट्टिकायें २९३० आँ, २८०० आँ, २६९० आँ पर हैं, यद्यपि कोलेस्टेरोल का शोषण मामूली है। आलोकित करने पर ये लुप्त हो जाती हैं और पदार्थ में सूखा दूर करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यह अनुमान किया गया था कि इस पदार्थका विटामिन-डी के अग्रगामी मूल पदार्थ से मुख्य सम्बन्ध है। जिन दिनों यह कार्य हो रहा था, उन्हीं दिनों रोज़नहाइम और

1. Schultz and Ziegler

2. Heilbron, Kamm and Morton

3. Ethyl acetate

वेक्सटर और हेस अनेक पदार्थों के ऊपर पराकासनी किरणों का प्रभाव देखते रहे। जब यह कार्य चल रहा था तभी यह पता चला कि एर्गोस्टेरोल से बहुत तीक्ष्ण सूखा-नाशक पदार्थ उत्पन्न हो गया। इन लोगों ने यह बताया है कि एर्गोस्टेरोल के शोषण-चित्र में तीन पट्टियाँ होती हैं, २९३०, २८०० और २६९० अँ पर, और क्वार्ट्ज पारद वाष्प लैम्प के प्रकाश से प्रकाशित करने पर यह पट्टियाँ लुप्त हो जाती हैं और साथही साथ इसमें सूखा-नाशक गुण उत्पन्न हो जाते हैं। पौल^१ के अनुसार एर्गोस्टेरोल का पराकासनी-शोषण चित्र उसी प्रकार का बनता है जैसा प्रोविटेमिन, जिसकी कोलेस्टेरोल में ०.०१७ प्रतिशत मात्रा है, बनाता है। रोजनहाइम और वेक्सटर साहब और विंडौस साहब यह देखकर कि एर्गोस्टेरोल जल्दी ही ओषदीकृत हो जाता है, और इसका किरण-चित्र कोलेस्टेरोल के समान किंतु उससे अधिक गहरा है और आलोकित करने पर इसमें तीव्र सूखा-नाशक गुण उत्पन्न होजाते हैं, इस अनुमान पर पहुँचते हैं कि प्रो-विटोमिन-डी या तो एर्गोस्टेरोल ही है या कोई उसी जातिका स्टेरोल है। वे यह भी कल्पना करते हैं कि प्राकृतिक रूप से उत्पन्न हुये कोलेस्टेरोल में इसी दूसरे पदार्थ के १/२००० भाग में उपस्थित होने के कारण ही बहुत तीव्र सूखानाशक गुण उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रभावित किया हुआ एर्गोस्टेरोल निश्चय ही बहुत शक्तिमान
 सूखानाशक पदार्थ है और यह अनुमान
 एर्गोस्टेरोल और प्रो-विटेमिन किया जाता है कि इसकी करीब ५ मिली-
 ग्राम मात्रा एक लिटर अच्छे मछलीके
 तैल के बराबर लाभकर होती है। रोज़ेन
 हाइम और वेन्सटर यह बतलाते हैं कि चूहों के लिये इसकी मात्रा
 १ १०००० से लेकर १ २०००० मिलीग्राम एक समय के भोजन
 के साथ है। ये लोग यह भी बताते हैं कि सूर्य के पराकासनी
 प्रकाश की दीर्घ लम्बाई वाली किरणें एर्गोस्टेरोल को प्रभावित कर
 देने की शक्ति रखती हैं। जब इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि
 मनुष्यों के चर्म में कोलेस्टेरोल १३ प्रतिशत से लेकर १७
 प्रतिशत तक मौजूद है और यह कि इस कोलेस्टेरोल में कोई
 ऐसा पदार्थ वर्तमान है जिसका पराकासनी शोषण चित्र वैसा
 नहीं है जैसा कि एर्गोस्टेरोल का है, तब इस बात का अनुमान
 होता है कि सूर्य का प्रकाश सूखा को अच्छा करने में कितना
 शक्तिमान है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य के प्रकाश का परा-
 कासनी भाग जिसको मनुष्यों का चर्म सोख लेता है चर्म के
 कोलेस्टेरोल के प्रो-विटेमिन से विटेमिन-डी बनाता है और
 यही प्रकाश से बना हुआ विटेमिन-डी सूखा के रोग को अच्छा
 करने की शक्ति रखता है। इस तरह से पराकासनी प्रकाश का,
 चाहे सूर्य का हो या कृत्रिम हो, प्रभाव सीधे न होकर घुमा कर
 है। लेकिन पालित और धर यह बताने हैं कि सूर्य के प्रकाश का

अच्छा प्रभाव इसलिये भी पड़ता है कि इससे पाचन शक्ति बढ़ जाती है ।

ऊपर के कथनानुसार यह पता चलेगा कि प्रो-विटेमिन-डी एर्गोस्टेरोल से भिन्न नहीं हैं । फिर भी जेण्ड्रासिक और केमेनीफी^१ अपने निरीक्षण से दूसरी बात बताते हैं । वे लोग इस बात का निश्चय नहीं कर पाये कि अगर कोलेस्टेरोल अरुणिन् (ब्रोमिन) से मिला कर फिर अवकृत किया जाय तो वह क्यों उत्तेजित नहीं होता । यह भी कहा जाता है कि अनुत्तेजित कोलेस्टेरोल अगर उत्तेजित कोलेस्टेरोल से स्फटिकीकरण विधि द्वारा अलग कर लिया जाय तो वह कई बार फिर उत्तेजित किया जा सकता है । सूखा अच्छा करने की शक्ति उत्तेजित भाग से पूर्वोत्तेजित भाग के हटा लेने पर भी पैदा होजाती है और अरुणिनीकरण के बाद भी कोलेस्टेरोल प्रभावित हो जाता है । इन दो कारणों से जेण्ड्रासिक और केमेनीफी यह कहते हैं कि कोलेस्टेरोल स्वयं प्रो-विटेमिन नहीं है बल्कि यह पानी की उपस्थिति में प्रो-विटेमिन पैदा कर देता है । वे यह भी कहते हैं कि पानी की एक एक बूंद कोलेस्टेरोल से निकाल लेने पर प्रो-विटेमिन नष्ट होजाता है और इसके बनने की सम्भावना भी नष्ट हो जाती है और खास शोषक-पट्टिका भी नहीं मिलती जब तक कि उसमें फिर से पानी न मिलाया जाय । इन सब बातों के लिये अभी

और प्रमाणों से पुष्टि होनी चाहिये । मैक नायर ^१ को यह पता चला है कि अरुणिनीकरण से एर्गोस्टेरोल पूरा नहीं हटाया जा सकता , करीब तीन प्रतिशत रह जाता है । यह भी पता चला है कि एर्गोस्टेरोल और इसके ईस्टर ही उत्तेजित किये जा सकते हैं, दूसरे पदार्थ जैसे आइसो-एर्गोस्टेरोल और नेत्रो-एर्गोस्टेरोल नहीं उत्तेजित किये जा सकते । ओषदीकरण और अवकरण से एर्गोस्टेरोल की विटामिन बनाने की शक्ति जाती रहती है क्योंकि विण्डौस और ब्रंकेन ^२ ने यह दर्शाया है कि एर्गोस्टेरोल परौषिद् प्रकाशित करने पर भी प्रभाव-रहित होता है ।

मौट न, हाइलब्रान और काम ^३ ने एर्गोस्टेरोल के शोषण-चित्र को भिन्न भिन्न समय तक प्रदीप्त करने के पहले और पीछे देखा तो उनको यह पता चला कि यदि १५० मिनट तक प्रदीप्त किया जावे तो २६००-३००० आँ का शोषण लुप्त हो जाता है और २३००-२६०० का शोषण जिसका अधिकतम शोषण २४७० आँ पर होता है दृष्टिगोचर होता है, और देर तक प्रदीप्त करने पर यह नयी पट्टिका भी लुप्त हो जाती है । यहाँ तक कि ६ घंटे के प्रदीपन से विशिष्ट शोषण ^४ बिलकुल नहीं होता । यह भली भाँति मालूम है कि मछली का तैल प्रदीप्त करने पर सूखा अच्छा करने

1. Mac Nair

2. Windaus and Brunken

3. Morton, Heilbron and Kamm

4. Selective absorption

का गुण छोड़ देता है। मोर्टन, हाइलब्रान और काम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि कुल प्रकाश जो कि एर्गोस्टेरोल पर पड़ता है, सोख लिया जाता है और प्रकाश-रासायनिक क्रियाओं के लिये सशक्त हो जाता है। वह प्रक्रिया जिससे विटैमिन बनता है किस प्रकार की है यह अभी तक नहीं ज्ञात हुआ है। यदि निम्न प्रक्रिया के आधार पर -

✓ एर्गोस्टेरोल + पराकासनी प्रकाश = विटैमिन-डी

काफ़ी मात्रा में विटैमिन पाना हो, तो बहुत देर तक पराकासनी प्रकाश 'विटा' शीशे से छान कर डालना चाहिये क्योंकि 'विटा' शीशा २७५० आँ से छोटी किरणों को छनने नहीं देता।

वेब्सटर और बोर्डिलोन^२ ने यह कहा है कि विटैमिन-डी के बनने और नष्ट होने का तापक्रम-गुणक^३ एक सा है और कम है और दोनों की प्रक्रियायें प्रकाश-रासायनिक हैं। रीरिंक और फ़ॉन विज्क^४ ने एर्गोस्टेरोल का पेट्रोल में घोल बना कर २७५० आँ किरणों से और २५४० आँ से प्रदीपन किया और यह हिसाब लगाया कि बड़ी किरणों से १५ मिनट तक प्रभावित कर देने पर विटैमिन-डी अकेला बनता है और इस समय में आधा एर्गोस्टेरोल विटैमिन बन जाता है। अधिक विशेष प्रदीपन से धीरे धीरे

-
1. Vita
 2. Webster and Bourdillon
 3. Temperature Coefficient
 4. Reerink and von Wijk

विटैमिन नष्ट हो जाता है। थोड़ी देर के प्रदीपन से जो पदार्थ मिलता है वह बहुत तेज और खेदार होता है और अगर यह ओषजन से बचा रहे तो उसमें एर्गोस्टेरोल का मिश्रण नहीं होता। खे ० के नीचे पिघलते हैं। हाल ही में आस्कन, बोर्डिलौन, ब्रूस, जेनकिन्स और वेन्सटर ने प्रदीप्त एर्गोस्टेरोल से शून्य-स्रवण की सहायता से और स्फटिकीकरण की विधि से एक पदार्थ अलग किया है जो बहुत सक्रिय है और ११३-११५° पर पिघलता है। उन्होंने यह नहीं कहा कि यह पदार्थ स्वच्छ विटैमिन-डी है। सम्भव है कि यह पदार्थ कोई निष्क्रिय पदार्थ हो जिसमें सक्रिय विटैमिन भी मिला हो या दोनों का संयुक्त रवा हो। यह भी सम्भव है कि एर्गोस्टेरोल के प्रदीपन से कई पदार्थ बनते हों और खे इनमें से एक के हों। इन्हीं लोगों ने बड़ी किरणों से जांच की है। उनके प्रयोगों से यह पता चलता है कि वह पदार्थ जिसका शोषण २८०० अं पर बहुत है विटैमिन-डी नहीं है, जैसा कि पहिले कहा गया है। यह पदार्थ बड़ी किरणों द्वारा प्रदीप्त पदार्थ पर छोटी किरणों के प्रभाव से बन सकता है। इन लोगों ने यह परिणाम निकाला है कि एर्गोस्टेरोल पर बड़ी किरणों के प्रभाव से दो पदार्थ एक साथ बनते हैं, जिनमें से केवल एक विटैमिन-डी होता है। इससे यह पता चलता है कि इस रूपान्तर का ठीक ठीक भेद जिससे कि प्रदीपन करने पर विटैमिन-डी बनता है अच्छी तरह नहीं मालूम हुआ।

हाइलब्रान, काम और मोर्टन ने कई तैलों का शोषण चित्र लिया और उन्होंने कुछ में एर्गोस्टेरोल की शोषण-पट्टिका पायी ।

कौन, डेनियल्स, और स्टीनबौक^१ ने यह दर्शाया है कि यदि कोलेस्टेरोल सिरकोन में परमाण्वेन से ओषदीकृत करके साफ किया जाय, तो वह प्रदीपन से सूखा रोग का नाशक नहीं बनाया जा सकता ।

प्रकाश से उतने परिमाण में जितने से सूखा रोग से पीड़ित चूहों में 'कैलशम' जमने लगे, विटमिन बनाने के लिये कम से कम ७००-१००० अर्ग सामर्थ्य की आवश्यकता है जिससे 6×10^{-12} ग्राम विटमिन-डी बनता है । एक रंग के प्रकाश की जैसे पारद-रेखाओं २५६०, २६५०, २८००, और २९०० अर्ग की 'क्वाण्टम-उप-युक्तता'^२ किरण की लम्बाई पर निर्भर नहीं है और न प्रदीपन की गति पर । ठोस एर्गोस्टेरोल और मद्य के घोल और एर्गोस्टेरोल एसीटेट दोनों से एक ही परिणाम मिलता है । मामूली कोलेस्टेरोल की क्वाण्टम-उपयुक्तता परिवर्तनीय है और एर्गोस्टेरोल के बराबर हो सकती है ।

हाल ही में मार्शल और नुडसन^३ ने यह दिखाया है कि एर्गोस्टेरोल से विटमिन-डी के बनाने की गति प्रकाश की प्रबलता

-
1. Kon, Daniels and Steenbock
 2. Quantum efficiency
 3. Marshall and Knudson

से एवं जो कागटा सोख लिया जाता है उससे सम्बन्धित है, लेकिन प्रकाश की लहर-लंबाई पर आश्रित नहीं है । इस प्रयोग की सापेक्ष कागटमात्रा प्रति शोषित कागटम ०.३ अणु है, अधिक से अधिक मात्रा जो प्रदीपन से बन सकती है, वह ३५ फोसदी है ।

विटमिन-डी उसी भाग में शोषण करता है जिसमें एर्गोस्टेरोल, और उन्हीं किरणों से जिनसे बनता है. नष्ट भी हो जाता है ।

नाना-प्रकार के अनुसंधानों के बाद भी यह नहीं कहा जा सकता कि एर्गोस्टेरोल से विटमिन-डी बनाने की क्या क्रिया है । हाइलब्रान, मोर्टन, और सेक्सटन ने केवल यह पता लगाने के लिये कि विटमिन-डी किस वर्ग का पदार्थ है । बहुत से कोलेस्टेरोल यौगिकों का शोषण-चित्र लिया है, 'निर्वाचित शोषण' तभी होता है जब पदार्थ में कम से कम दो द्वि-बन्ध^२ हों । यह प्रदर्शित किया गया है कि कोलेस्टेरीलीन का शोषण चित्र एर्गोस्टेरोल के चित्र से मिलता जुलता है और यह मालूम होता है कि एर्गोस्टेरोल के तीन द्विबन्धों में से दो की जगह वही है जो कोलेस्टेरीलीन में है । कोलेस्टीनोन और विटमिन-डी में भी सम्बन्ध मालूम होता है । बोर्डिलोन, फिशमेन, जेनकिन्प, और वेक्सटर ने प्रदीपन करने पर जो जो रूपान्तर होते हैं उनका अध्ययन किया है । प्रदीपन किये हुये एर्गोस्टेरोल की सूखा-

1. Selective absorption

2. Double bond

नाशक-शक्ति की तुलना शोषण-चित्र से की गयी है और तीन पदार्थों के बनने का प्रमाण मिला है। पहले की शोषण-पट्टिका एर्गोस्टेरोल की से मिलती है जिसका 'अधिकतम' २८०० आँ पर है लेकिन इससे दूना तेज है। यह माना जाता है कि यह पदार्थ विटामिन-डी है। दूसरे पदार्थ का, जो पहले को और देर तक प्रदीपन करने पर मिलता है, अधिकतम शोषण २४०० आँ पर है और सूखा नहीं अच्छा कर सकता। तीसरा पदार्थ जो दूसरे पदार्थ से बनता है, न तो सूखा अच्छा कर सकता है और न इसमें विशिष्ट शोषण ही है। इस बात के लिये युक्तियां दी गयी हैं कि प्रदीपन से एर्गोस्टेरोल सीधे विटामिन ही बनाता है। इससे अणु का कोई ह्रास नहीं होता। अभी हाल ही में बोर्डिलोन, जेनकिन्स और वेब्सटर ने यह कहा है कि वे इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि २८०० आँ पर की शोषण पट्टिका विटामिन-डी की नहीं है किन्तु इसके किसी विकृत पदार्थ की है। इस लहर लम्बाई पर विटामिन का शोषण कम होता है। एर्गोस्टेरोल का शोषण चित्र अभी अनिश्चित ही है। नुडसन और मूर^२ ने कुछ प्रमाण ऐसे दिये हैं कि एर्गोस्टेरोल में सूखा-नाशक गुण मृदु रोञ्जन-रश्मियों के प्रदीपन से भी पैदा किये जा सकते हैं। क्लूज़ट और कोफमन^३ ने यह बतलाया है कि जब स्टीरोलों को परा-

-
1. Bourdillon, Fischmann, Jenkins, and Webster
 2. Knudson and Moore
 3. Clutzet and Kofman

कासनी प्रकाश में या रोञ्जन-रश्मियों में या रेडियम की किरणों में रख दिया जाय तो वे बाद को फोटोग्राफिक प्लेटों को काला कर देते हैं। हूगोनक और कूचर^१ ने भी ऐसा ही देखा है।

इतना सब होने पर भी एर्गोस्टेरोल से विटामिन बनने की क्रिया निश्चित नहीं हो सकी।

हालके प्रयोगों से पता लगता है कि विटामिन-ए बनने की सम्भावना अंधेरे में भी है। केवल उतने प्रकाश की आवश्यकता है जितने से पशुओं को देखा जा सके और जितने में उन्हें खिलाया, पिलाया जा सके (मूर को पता लगा कि गेहूँके बीज में विटामिन-ए नहीं होता और यह भी पता लगा कि चूहों को वह भोजन देने पर जिसमें विटामिन-डी था पर विटामिन-ए नहीं था, उनकी वृद्धि सन्तोष-जनक पाई गयी। यह निश्चित है कि प्रकाश विटामिन-ए बनने की गति को तेज कर देता है, क्योंकि हरी पत्तियों से प्रकाश बहुतायत से मिलता है।)

प्रदीपन से भोजन पदार्थों के उत्तेजित होजाने का कारण ठीक ठीक नहीं बताया जा सका है। हाल में धर और पालित ने यह मत प्रकाशित किया है कि जब कोलेस्टेरोल, जैतून का तैल इत्यादि प्रकाश में रखे जाते हैं तो परौषिद बनता है और इनसे दूसरे भोजनों का ओषदीकरण होना शुरू हो जाता है। इसलिये जिन पदार्थों में विटामिन नहीं रहता उनका प्रभाव परौषिद के

कारण होता है। इस बात को पुष्टि नीचे दिये हुए प्रयोगों से होती है।

पानी में मिले हुये पदार्थों में कर्बनद्विआोषिद रहित वायु ५ घंटे तक प्रवाहित किया गया। इसके बाद अधिक मात्रा में पांशुज नैलिद और तेजाव्र डाल दिया गया। तब जो नैलिन् निकला वह सा /१०० गन्धकोगन्धेत के घोल से नाप लिया गया। नीचे की सारिणोमें प्रयोग फल दिये गये हैं।

वस्तु	मात्रा ली गयी घ. श. म. में या ग्राम में	सा/१०० गंधको गंधेत की मात्रा (घ. श. म. में)
जैतून का तैल	३ घ. श. म.	३.२
सरसों का	"	१.४
गरी का	"	१.००
महुआ का	"	१.२०
अंडी का	"	०.९५
तिल का	"	१.२०
अलसी का	"	०.९०
मक्खन	०.९२ ग्राम	२.२५
नशास्ता	०.१ ग्राम	०.२०
मधुकोजन	०.१ ग्राम	०.०५
डेक्सट्रोन	०.१ "	०.४५
द्राक्षोज	०.१ "	०.०८

प्रदोष किये हुये पदार्थ दूसरे पदार्थों को ओषदीकृत कर सकते थे । जिस मात्रा में वे द्राक्षशर्करा को ओषदीकृत कर सकते हैं यह मालूम किया गया ।

पदार्थ	प्रतिशत द्राक्षोज को ओषदीकृत मात्रा
सरसों का तैल	५.५
गरी "	३.७
महुआ "	३.३
अंडी "	४.१
तिल "	२.३
अलसी "	०.८

इन सबसे यह पता चलता है कि जब भोजन प्रकाश में रख दिया जाता है तो वह आषजन ले लेता है, और सम्भवतः परौषिद् बन जाता है । यह परौषिद् दूसरे पदार्थों से मिलने पर उनका ओषदीकरण कर देता है । परिणाम-स्वरूप प्रदोष पदार्थों को साधारण भोजन में मिलाने से भोजन की पाचनशक्ति बढ़ जाती है और फल अच्छा होता है ।

चक्रवर्ती और धर, और पालित और धर कबूतरों को खिला कर नाचे लिखे नतोजे पर पहुँचे हैं :—

५ सप्ताह तक रंगूनी चावल खिलाने पर कबूतरों में पोली-न्युराइडिस रोग नहीं होता यदि उनको सूर्यका प्रकाश मिलता

रहे । भोजन में पालक, बथुआ और टमाटर आदि के मिला देने से उतना असर नहीं होता जितना प्रकाश से होता है । कलाद्रु^१ लोहिक उदोषिद और लोहिक हरिद उतने ही प्रभावकर होते हैं जितना कि शाक इत्यादि । तुलनात्मक प्रयोगों से पता चलता है कि सूर्य का प्रकाश पोलोन्युराइटिस और बेरीबेरी को दूर करने में बहुत लाभदायक है । इससे कम प्रदीप्त जैतून का तैल है । उष्ण कटिबन्ध में बहुत से रोग प्रकाश के कारण नहीं होते । यह आश्चर्यजनक है कि डेलार^१ ने यह मालूम किया है कि जैतून और अलसी का तैल और खासकर मछली का तैल जब अंधरे में वायु में रक्खा जाता है तो वजन में बढ़ जाता है । अगर पहले से पराकासनी प्रकाश से तैल प्रदीप्त कर लिया जाय तो उनका स्व-ओषदीकरण बढ़ जाता है पर कुछ सीमा तक बढ़कर फिर घटने लगता है । दूसरे तैलों को तुलना में ऐसा मालूम पड़ता है कि मछली का तैल मानों पहले से ही प्रदीप्त किया हुआ है । हाल ही में रूसो^१ ने यह दिखलाया है कि जैतून के तैल में घुला हुआ ०.५% एर्गोस्टेरोल ओषदीकरण की ज्यादा शक्ति रखता है यदि वायु और सूर्य के प्रकाश में रख दिया जाय । कोलेस्टेरोल में ऐसा नहीं होता ।)

ओर्र, हेण्डरसन और क्रिच्टन^२ ने यह देखा कि जब नौ

1. Delore

2. Rousseau

3. Orr, Henderson and Crichton

सप्ताह के सूअर के बच्चे एक घंटे प्रति दिन पशु-पक्षियों के कर्बन के प्रकाश से एक गज की दूरी पर पालन और पौधों रक्खे गये तो उनके शरीर में खटिकम् के विक्राम में (कैलशम्) और स्फुर बहुतायत से इकट्ठा प्रकाश का उपयोग हो गया, और मल में खटिकम् की मात्रा घट गयी । फेयरहाल^१ ने यह दिखाया है

कि प्रदीप भोजन से चूहों के खून में खटिकम् की मात्रा उसी आयु के अन्य चूहों की अपेक्षा बढ़ गयी, जिनका भोजन प्रदीप नहीं किया गया था । प्रदीपन से चूहों में खटिकम् संग्रह करने की शक्ति बढ़ गयी, चाहे उनको कैसाही भोजन दिया जाय ।

✓ (प्रदीपन से मुर्गी के बच्चों के पैर शक्तिशाली हो जाते हैं । हड्स और पेन^२ और हार्ट, स्टीनबोक, और एल्वेजेम^३ ने यह दिखाया है कि पराकासनी प्रकाश से अंडा देने की शक्ति और उन अंडों का अच्छापन बढ़ जाता है । ओर, हेगडरसन और क्रिक्टन कहते हैं कि पालतू जानवरों को सूर्य का प्रकाश बहुत मिलना चाहिये और जाड़े में कृत्रिम प्रकाश काम में लाना चाहिये । खेतिहरों को जानना चाहिये कि सूर्य के प्रकाश का प्रभाव न केवल उनके पौधों पर बल्कि जानवरों पर भी पड़ता है ।)

1. Fairhall

2. Hughes and Payne

3. Harts, Steenbock and Elvejem

√त्सूजो^१ ने पराकासनी प्रकाश का जो प्रभाव गन्ना, अनन्नास और केले पर पड़ता है उसके विषय में अन्वेषण किया है और यह मालूम किया है कि प्रकाश में गन्ना खूब बढ़ता है और उसमें शक्कर की मात्रा बढ़ जाती है ।

√माक्नेने और डेमैसी^२ ने यह कहा है कि जब उचित प्रकार से पराकासनी प्रकाश काम में लाया जाय तो फूलों और तरकारियों की बाढ़ तेज़ हो जाती है ।

√शेयर्ड और हिगिन्स^३ ने यह दिखाया है कि बीजों के अंकुरित होने में ३२००—३९०० अँ का प्रकाश लाभदायक है और क्वार्ट्ज पारदर्क लैम्प की २७०० - ३२०० अँ किरणों का प्रकाश बाधक होता है यद्यपि ये किरणें रोगों के निवारण में गुणकारी हैं ।

प्रकाश के प्रभाव के आधार पर एगुलहोन^४ ने प्रेरकाणुओं (enzymes) के तीन भाग किये हैं :—
 प्रकाश का प्रेरकाणुओं (१) सब तरह के प्रकाश में वायु से और विषमाणुओं पर आपदीकृत होने वाले पर शून्य में केवल प्रभाव पराकासनी प्रकाश से नष्ट हो जाने वाले जैसे शर्करेज़, टायरोसिनेज़, लाक्षेज़, आदि ।

1. Tsuji

2. Maquenne and Demoussy

3. Sheard and Higgins

4. Agulhon

(२) जो सब प्रकार की किरणों से ओषजन या बिना ओषजन के नष्ट हो जाने वाले । जैसे इमलसिन, कैटेलेज़ ।

(३) पराकासनी प्रकाश से शून्य में नष्ट हो जाने वाले और अन्य प्रकाश से कुछ मंद पड़ जाने वाले, जैसे रेनट ।

पिनकुसेन और उसके साथियों ने यह कहा है कि पराकासनी प्रकाश में डायस्टेज़ की शक्ति का ह्रास हो जाता है, वह चाहें जिस मात्रा में उपस्थित हों । परन्तु सूर्य के प्रकाश में नहीं होता । उन्होंने देखा कि डायस्टेज़ और माल्टेज़ जब सूर्य के प्रकाश में रक्खे जाते हैं तो नमक उनको नष्ट होने से बचा लेता है । दूसरे प्रकार के लवण भी ऐसा ही करते हैं । पेंक्रियाटिक, लालाणु, और टेका डायस्टेज़ का कार्य पराकासनी प्रकाश में जब पांशुजनैलिद उपस्थित रहता है, तीव्र हो जाता है किन्तु माल्ट-डायस्टेज़ का कार्य मंद पड़ जाता है । इन लोगों ने यह भी दिखाया है कि वे सचेष्ट प्रेरकाणु जो यूरियेज़ में हैं सूर्य के प्रकाश में मंद पड़ जाते हैं और पराकासनी प्रकाश में नष्ट हो जाते हैं । लोअर्स और लोरिन्सन^१ ने माल्ट-एमाइलेज़ के गर्मी के कारण मंद पड़ने की तुलना पराकासनी प्रकाश के प्रभाव से की है । पराकासनी प्रकाश द्वारा जनित मंदता न तो 'एकाणुप्रक्रिया' के अनुसार होती है और न 'द्वयणुक प्रक्रिया' के अनुसार ही और न इसमें शुट्ज़ का नियम ही लागू होता है । इनके मतानुसार दोनों प्रकार की मंदतायें अलग अलग प्रकृति की हैं । पिनकुसेन ने

1. Luers and Lorinsen

यह बताया है कि जो डायस्टेज़ पराकासनी प्रकाश से मंद पड़ गया है, उसमें थोड़ी मात्रा में नया डायस्टेज़ डालने से तेज़ी आ जाती है। इन्होंने और इनके साथियों ने यह बताया है कि खरगोश के खून के रस की 'लायपेज़-क्रिया' प्रदीपन से बहुत क्षीण हो जाती है।

खरगोशों को पराकासनी प्रकाश में देर तक रखने पर उनकी फ़ैगोसायटिक प्रक्रिया में जो परिवर्तन होता है उसका पता 'अलबेल'^१ को नहीं लग सका। (हाउर और पोट्टोफ ने यह देखा कि जानवरों को पराकासनी प्रकाश में रखने से उनमें विषमाणुओं (antibodies) के उत्पन्न होने में थोड़ा ही अंतर पड़ता है। रंगे हुये पशुओं में यह अंतर बिना रंगे हुये की अपेक्षा बहुत अधिक होता है)। हाउर का यह कथन है कि हैजे और पैरा-टायफायड-ए के एग्लूटिन्स पर पराकासनी प्रकाश का असर टायफायड के एग्लूटिन्स पर के प्रभाव से ज्यादा होता है और बेक्टीरियोलायसिनों पर और ज्यादा होता है। फ्रीडबर्जर और सीमोन^३ के अनुसार रंजित रक्त-रस (हीमोलीटिक सीरम) को पराकासनी प्रकाश में रखने पर उसके एम्बोसेप्टर में कमी पाई जाती है। ट्रायपेनोसोमों की चेष्टता प्रदीप्त होने पर शीघ्र ही कम हो जाती है। मनुष्यों का 'वैसरमन रक्तरस' और 'ज्यार्ज-धना-

1. Albela

2. Heuer and Potthoff

3. Friedberger and Seimone

त्मक-रक्तस' पराकासनी प्रकाश में रखने से ऋणात्मक हो जाता है ।

✓ 'बाल्डेरी और बारकस' ने यह देखा है कि सूर्य के प्रकाश में रहने पर मनुष्य-शरीर के रक्त में क्षारता बढ़ने लगती है। कूपमेन^२ ने यह बताया है कि पराकासनी प्रकाश में शरीर को रखने से शरीर के रक्त-संचालन, अधःक्षेपण बिन्दु, रक्ताणु, हीमोग्लोबिन आदि में कोई अंतर नहीं पड़ता है । क्लार्क के मतानुसार ३०००—२००० आँ तक किरणें श्वेताणुओं की संख्या बढ़ा देती हैं । क्रोट्ज़^३ ने यह बतलाया है कि पराकासनी प्रकाश या रोञ्जनरश्मियों से रक्त में पानी बढ़ जाता है । दो घंटे बाद फिर पानी की मात्रा पहले के समान हो जाती है ।

✓ 'दस वर्ष हुए रिस्लर, फिलिबर्ट, और कोर्टियर'^४ ने अलमुनियम के तार से उत्पन्न विद्युत् प्रकाश का जो असर कीटाणुओं पर होता है उसका निरीक्षण किया । उन्होंने यह बतलाया है कि यक्ष्मा के कीटाणु नेत्रोन-लैम्प के प्रकाश से बहुत कुछ नष्ट हो जाते हैं यदि साथमें पिनासायनोल वर्ग के रंग भी उपस्थित हों ।)

✓ कोई ५० वर्ष से यह ज्ञात है कि पराकासनी प्रकाश कीटाणुओं प्रकाशसे निश्चेष्टीकरण को मारने की शक्ति रखता है । निम्न बातें देखी गई हैं:—

-
1. Balderry and Barkus
 2. Koopmann
 3. Kroetz
 4. Risler, Philibert and Courtier

(१) २५७२-२१०० आँ तक की पराकासनी किरणों कीटाणु मारने में अधिक सफल हैं। ३८०० से ३००० आँ तककी किरणें बहुत कम सफल हैं लेकिन ये किरणें चर्म में २५७० से २१००आँ तक की किरणों की अपेक्षा अधिक घुसने वाली हैं।

(२) जो किरणें सांखली जाती हैं वे ही क्रियावान होती हैं। प्रकाशका असर जितने समय तक प्रकाश डाला जाय उम अवधि पर और प्रकाश की तीव्रता पर निर्भर है।

(३) प्रकाशका प्रोटीन पर प्रभाव पड़ता है और सम्भवतः वानजावीन समूह के अमिनो-अम्लों पर ज्यादा।

(४) कीटाणु को मारने के लिये वायु के ओषजनकी आवश्यकता नहीं है। मरना प्रकाश ही पर निर्भर है। ओषोन, या उदजन परौषिद या किसी और पदार्थ के बनने पर नहीं।

(५) अगर द्रव पदार्थ स्वच्छ न हो, धुंधला हो तो कीटाणु कम मरते हैं।

(भिन्न भिन्न प्रकार के कीटाणुओं पर प्रकाश का प्रभाव अलग अलग पड़ता है। हैजा, टायफायड, पेचिश, आदि के कीटाणु तुरंत नष्ट हो जाते हैं और एन्थ्रेसिस कीटाणु, न्यूमोबेसिलस और सारसिना एल्वा देर में नष्ट होते हैं। इन सब से अधिक देर में निम्न कीटाणु नष्ट होते हैं:— टेटेनी, मेगाथीरियम, फुलीओल, सबटीलिस और सारसीना। पेरामीसियम को कैलाई की अपेक्षा १० गुना और यीस्टको २० गुना अधिक समय

लगता है। इस बात में लाभ उठाया जाता है। जब दूध पराकासनी प्रकाश से निश्चेष्ट किया जाता है तो लाभदायक कीटाणु तो नहीं मरते बल्कि नुकसान पहुँचाने वाले कीटाणु मर जाते हैं।

वैकसीना वीरस पराकासनी प्रकाश से निश्चेष्ट किया जा सकता है क्योंकि नुकसान करने वाले कीटाणु लाभकर कीटाणुओं की अपेक्षा प्रकाशसे अधिक मर जाते हैं।

'मरनोवांडीनु, हंनरी, और बेरोनी' ने यह देखा कि यक्ष्मा कीटाणुओं का पायसघोल पराकासनी प्रकाश में निश्चेष्ट हो जाता है और क्षय कीटाणु मंद पड़ जाते हैं। अन्य लोगों ने यह पाया कि दूध के ओक्सीडेज कीटाणु, तैलके लिपोयड विश्लेषक जीवाणु, डिप्थीरिया के विषाणु और रक्तसके विषाणु पराकासनी प्रकाश में मंद पड़ जाते हैं।)

कोब्लां और फुल्टन^२ ने कोलाई विषाणु के घोलोंको पारद-लैम्पके पराकासनी प्रकाश में रक्खा और यह मालूम किया कि १६५० आँ तक की किरणोंमें कीटाणुओं को नष्ट करने की शक्ति है। जैसे जैसे किरण की लम्बाई बढ़ती जाती है वैसे वैसे यह शक्ति कम होती जाती है। २९७०-३६५० आँ तककी किरणों में देर तक रखना पड़ता है। २८०० आँ से छोटी किरणों का प्रभाव ३०५० से बड़ी किरणों का १० गुना है। कोब्लां और फुल्टन ने कोलाई के कीटाणुओं को १७००-२८००आँ तक की

1. Cernovodeanu, Henri and Baroni

2. Coblentz and Fulton

किरणों से मारने की सामर्थ्य की गणना की और लगभग 19×10^{-12} वाट पाया ।)

ड्रेयर^१ ने यह देखा कि रश्मिचित्र के बीचका भाग कोई प्रभाव नहीं रखता पर इरीथ्रोसिन के 1×1000 अणु के घोलकी उपस्थिति में प्रभाव-युक्त हो जाता है । बर्नार्ड और मारगन^२ के अनुसार जीवित पदार्थमें निश्चेष्टीकरण पैदा करना कठिन है । फिर भी घावों पर प्रकाश डालने से अच्छा फल मिलता है । लेज़र^३ ने पगकासनी प्रकाश से सुई लगाने वाली आंघाधियों को निश्चेष्ट करने का यत्न किया है । जैतून, बिनौला, और बादाम के तैल चर्बी और मक्खन, इनसुलिन इत्यादि पगकासनी प्रकाश से निश्चेष्ट हो जाते हैं ।

दूधके लिये हेलब्रोनर और रेकलिंगहौसन^४ ने यह कहा है कि प्रकाश से पूरी तौर से निश्चेष्ट करना कठिन है और देर तक रखने से स्वाद बिगड़ जाता है । वे 60° पर निश्चेष्ट करने की अनुमति देते हैं । यह हो सकता है कि प्रदीप्त करने पर दूध में विटैमिन-डी बनजाता हो और 'ए' की कमी हो जाती हो ।

प्रकाश से पानी को निश्चेष्ट करने में कई लाभ हैं—

(१) पानी के गुणों में कोई अंतर नहीं पड़ता । घुली हुयी वायु और गैस पदार्थ जो स्वाद पैदा करते हैं, नष्ट नहीं होते ।

1 Dreyer

2. Bernard and Morgan

3. Lesure

4. Helbronner and Recklinghausen

(२) पूर्णतः निश्चेष्टीकरण किया जा सकता है और पानी शल्य-चिकित्सा के काम में लाया जा सकता है, और मक्खन के व्यवसाय में भी ।

पराकासनी प्रकाश द्वारा प्रदीपन करने से पहले पानी को बिल्कुल स्वच्छ कर लेना चाहिये । फिटकिरी डाल कर या छान कर पानी स्वच्छ किया जा सकता है ।

उत्तरार्द्ध

प्रयाग विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला से जो गवेशषणायें प्रकाशित हुई हैं, उनमें यह बताया गया है कि परनिशस एनीमिया रोग (जिसकी प्रकृति पूरी तौर से नहीं मालूम है) शरीर में बी-और सी-विटेमिन की कमी के कारण होता है । परनिशस एनीमिया के लक्षण लगभग वही हैं जो स्कर्वी और पेलाग्रा के हैं । स्कर्वी, परनिशस एनीमिया और पेलाग्रा की प्रारम्भिक दशामें, चमड़े का पीलापन, उदासी, विराग, मांस पेशियों का कमजोर होना, अनिद्रा, सिर का चक्कर खाना, और थोड़ी सी सांस की कठिनाई इत्यादि लक्षण दिखाई देते हैं । चमड़ा पीला और रूखा हो जाता है और उस पर नीले दाग पड़ जाते हैं । इसके साथ साथ पैरों और कमर के भाग में प्रायः पीड़ा होती है । इन सब रोगों में पाचन क्रिया में विकार पैदा हो जाता है और भूख कम हो जाती है । जीभ पर मोटी परत पड़ जाती है और बाद को रोगी के सिर में चक्कर आने लगता है और हृदय की धड़कन बढ़ जाती है । रोगी शीघ्र ही मूर्च्छित हो जाता है और हृदय की कमजोरी बढ़ने लगती है ।

✓सूर्यका प्रकाश परनिशस एनीमिया के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है । रिकेट जिसे सूखा भी कहने हैं, शरीर में किसी पदार्थ की कमीके कारण होता है, और इसमें सूर्यके प्रकाश और पराकासनी किरणों से चिकित्सा करने से लाभ होता है ।

सम्भवतः म्कर्वी, बेरीबेरी, परनिशस एनीमिया और पेलाग्रा इत्यादि का कारण विटामिन बी-और-सी—जो कि उत्प्रेरकों का काम करते हैं—के अभाव से पूरी तौर से पाचन क्रिया का न होना है। यह स्पष्ट है कि बहुत सी रासायनिक क्रियायें सूर्य के प्रकाश से तीव्र हो जाती हैं और शर्करा, चर्बी, और प्रोटीन का पाचन रोशनी से बढ़ जाता है। परनिशस एनीमिया में सूर्य के प्रकाश से लाभ होने का कारण यह है कि प्रकाश से रोग के कारण बिगड़ी हुई पाचन शक्ति बढ़ जाती है।

दस वर्ष हुए, मिनोट और मुरफी^१ और कोह, मिनोट, औलेस और साल्टर^२ ने यह सिद्ध किया है कि परनिशस एनीमिया के रोग में कलोजी या यकृत अधिक खिलाने से लाल रक्त की मात्रा बढ़ जाती है। यह लाभ कोई ऐसी वस्तु के कारण होता है जो कि स्तनपायी जीव समुदाय के कलेजे या यकृत में पायी जाती है, और यह अनुमान किया जाता है कि उसका रोगी के कलेजे में अभाव होता है। कोह, मिनोट, औलेस और साल्टर ने यह भी बताया है कि यह लाभकारक पदार्थ यकृत से कैसे निकाला जा सकता है और उन्होंने उस पदार्थ के गुणों को भी बताया है।

डा० धर ने यह मत प्रकाशित किया है कि खास करके मुँह और पेटका कैंसर या नासूर दूषित पाचन क्रियाके कारण होता

1. Minot and Murphy

2. Cohn, Minot, Alles, and Salter

है, और सम्भवतः स्कर्वी, बेरी बेरी और पेंलाग्रा की तरह शरीर में किसी पदार्थ की कमी के कारण होता है। बहुत सम्भव है कि कैंसर या नामूर और सी की कमी प्रारम्भिक दशामें विटामिन-बी और-सी के अभाव से होता हो।

अभी कुछ दिन हुए जब से इस रोग के कोटागु मत पर विशेष वाद-विवाद होने लगा है परन्तु अभीतक इस विषय का कोई निर्णय नहीं हुआ।

इस रोग में भी आरम्भ में द्यूधा की कमी, भोजन से घृणा, वायु दोष, खट्टापन और उदर दोष होते हैं। कुछ लक्षण ऐसे हैं जो परनिशस एनीमिया के लक्षणों से मिलते जुलते हैं। समय के साथ २ जीभ के ऊपरी भाग से बहुत कुछ एपीथीलियम नष्ट हो जाता है और श्लेष्मिक झिल्ली सूखी हो जाती है। इन लक्षणों से यह प्रकट होता है कि सम्भवतः मुँह और पेटका कैंसर परिपाक-प्रणाली के ठीक न होने से, विटामिन की कमी से और सूर्य के प्रकाश के अभाव से — जो कि पाचनक्रिया की गति को तीव्र कर देता है होता है। यह ध्यान देने की बात है कि गरम देशों में जहाँ सूर्य के प्रकाश की अधिकता होती है, कैंसर ठंडे देशों की अपेक्षा कम होता है यद्यपि गरम देशों के मनुष्यों को ठंडे देशोंके मनुष्यों की अपेक्षा कम और खराब भोजन मिलता है। डा० धर का यह मत है कि इसका कारण सूर्य के प्रकाश का पाचन पर

लाभप्रद प्रभाव का होना है (सूर्य के प्रकाश में चरबी, कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन का पाचन तीव्र हो जाता है। अतएव भोजन में विटामिन की कमी के कारण विशेष पदार्थों के अभाव से जो रोग हो सकते हैं व गरम देशों के लोगों में नहीं हो पाते क्योंकि सूर्य के प्रकाश का लाभप्रद प्रभाव पाचन पर पड़ता है।)

धरने यह मत प्रकाशित किया है कि ए- और डी-विटामिन जो चरबी वाले भोजन में रहते हैं, चरबी के पाचन में सहायक होते हैं। जब चरबी का पाचन ठीक नहीं होता तब अपच, खट्टापन, सूखा, आँसू का कष्ट इत्यादि दोष उत्पन्न हो जाते हैं। डा० धर का यह मत है कि बी-विटामिन कार्बोहाइड्रेट वाले भोजन के अपोषण या पाचन को तीव्र कर देता है। और बेरी-बेरी बी-विटामिन के अभाव के कारण कार्बोहाइड्रेट की परिपाक-प्रणाली के बिगड़ जाने से होती है। इस मत की पुष्टि फंक और डूबिन¹ के अनुसन्धानों से होती है। इन्होंने यह सिद्ध किया है कि ओटोलाईज़ किए हुए खमीर को चूहों के भोजन के साथ देने से उन चूहों के वजन में प्रतिशत अधिक बाढ़ होती है जिनके भोजन में कार्बोहाइड्रेट था और उनमें कम जिनके भोजन में प्रोटीन था क्योंकि बी-विटामिन जो खमीर में वर्तमान है, प्रोटीन के बनिस्वत कार्बोहाइड्रेट के पाचन में अधिक सहायक होता है। अतएव खमीर प्रोटीन की अपेक्षा कार्बोहाइड्रेट के भोजन में अधिक लाभप्रद होता है। उसके अलावा

फिण्डले^१ के अनुसन्धान से यह प्रतीत होता है कि बेरीबेरी कार्बोहाइड्रेट के परिपाक के ठीक न होने से ही होती है। यह मत कि बेरीबेरी पाचन का रोग है ओकाडा^२ और अन्य व्यक्तियों के निरीक्षण से सिद्ध होता है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि बी-विटामिन के नष्ट होने से मनुष्य की पाचन-शक्ति कम हो जाती है।

चक्रवर्ती और धर महोदयों ने जो अन्वेषण कबूतरों पर किये हैं उनसे यह मालूम होता है कि जब साफ किया हुआ चावल खिलाया जाता है तब आरम्भ में पाचन का दोष उत्पन्न होता है और बाद में वही पोलिन्यूराइटिस में परिवर्तित हो जाता है। युद्ध के समय में ओडोमा का जो प्रकोप था—उसके साथ साथ सर्वदा पाचन का भी दोष लगा रहता था। ऐसा ही बेरीबेरी के आरम्भ में भी होता है। अतएव यह कहना पड़ता है कि भोजन ठीक न होने से पेट में खराबी, पाखाना का बहुत अधिक होना, बेरी बेरी, स्कर्वी, पेलाग्रा, परनिशस एनीमिया और और किसी किसी हालत में कैंसर हो जाता है। ये व्याधियाँ पाचन प्रणाली से सम्बन्ध रखती हैं इस लिए इन पर सूर्य के प्रकाश और पराकासनी प्रकाश से लाभ होना चाहिए।

भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों में रंतौधी एक साधारण रोग है जो निर्धन और कंगालों में बहुत होता है। हमने देखा है

1, Findlay

2. OKada

कि ग्राम करके बिहार, छोटा नागपुर और युक्त-प्रान्त के कुछ पहाड़ी भागों में गरीबों में अधिकतर लोग जिन्हें पूरा भोजन नहीं मिलता रतौंधी से आक्रान्त होते हैं।

आँख की व्याधियाँ और छोटा-नागपुर के गरीब लोगों का यह विटैमिन-ए का अभाव विश्वास है कि भेड़ या बकरी की यकृति रतौंधी की सबसे उत्तम ओषधि है।

इन गरीबों को अंडा, मक्खन, दूध नहीं मिल सकता और वर्ष में कई मास पानी न पड़ने से हरे सागपात भी, जिनमें विटैमिन ए रहता है, नहीं मिल सकते। अतएव गरीबों को रतौंधी करंटो-मेलेशिया, जेरोथैलमिया आदि जो कि विटैमिन-ए की कमी के कारण होते हैं, हो जाते हैं।

डा० धर ने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि ल्यूकेमिया, जो कि रक्त की एक अद्भुत बीमारी है और जिसके विषय में अभी अत्यन्त कम ज्ञान है विटैमिन की कमी के कारण होती है। लेखक ने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि गरम देशों के अनेक रोग खराब भोजन और विटैमिन की कमी के कारण होते हैं।

यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि परनिशस एनीमिया, पेलाग्रा और स्कर्वी इत्यादि में कुछ मिलते आवश्यक पदार्थ के जुलते लक्षण हैं। यह भी कहा जा चुका है अभाव के रोग और कि पेट के विकार जैसे पेट आँव, कैं का होना, आँतों की गड़बड़ी दस्त का अधिक होना — आदि स्कर्वी पेलाग्रा

और परनिशस एनीमिया में पाए जाते हैं। इसके सिवाय हैमिल्टन राइट^१ ने यह प्रकाशित किया है कि बेरी-बेरी में रोगी को आरम्भ में भूख की कमी, पेट में दर्द और विकलता मालूम होती है तथा जो आरम्भिक शलत में मरते हैं उनकी नसें फूल जाती हैं, रक्त प्रवाह होने लगता है और आंतों की भिछी फूल जाती है।

एपिडेमिक ड्राप्सी में भी हम देखते हैं कि आँत की गड़बड़ी हो जाती है तथा कैं, दस्त, आँव और एनामिया आदि विकार हो जाते हैं। मैककैरिसन^२ ने देखा है कि खराब भोजन से जिसमें विटैमिन-बी और-सी की कमी रहती है, पेट की, आँत-पित्त की खराबी और पेट के भीतर के परिपाक क्रिया के यन्त्र (Pancreatic) में गड़बड़ी आ जाती है। ऐसे होन भोजन से आँतों की पतली भिछियाँ सूखने लगती हैं जिससे पाचन व परिपक्व क्रिया मंद पड़ जाती है और कीटाणुओं के प्रकोप से बचने की शक्ति जाती रहती है।

कबूतर जिनको केवल साफ किया चावल दिया जाता है डाएरिया (दस्त का अधिक होना) रोग से आक्रान्त होते हैं। इसे हम विटैमिन की कमी का लक्षण समझ सकते हैं क्योंकि हम देखते हैं कि बहुधा अण्डे के पीले भाग को अलकोहोल के साथ मिलाकर देने से यह अच्छा हो जाता है। डाएरिया अथवा

1 Hamilton Wright

2 Mc Carrison

कोलटिस सर्वदा युद्ध-ओडेमा के आगे, बाद में अथवा साथ साथ होता है। इसका कारण सम्भवतः भोजन में प्रोटीन और ऐंटी-न्यूरिटिक पदार्थ का अभाव है। कम से कम इतना कहना पड़ेगा कि तर बेरोबेरी के विषय में तो यह ठीक ही है। भोजन में उचित पदार्थ के लगातार अभाव के कारण आँत और पेट के रोग और कभी कभी नासूर हो जाते हैं।

यह बहुत दिनों से मालूम है कि सूखा रोग भोजन में उचित पदार्थ की खराबी और अनुपयुक्त भोजन रिकेट, सूखा या मिठुआ से होता है। क्रानिक डाएरिया (जीर्ण और चर्बीका पाचन दस्त) जो स्वयं खराब भोजन के कारण होता है—अकसर सूखा के पहिले होता है। भोजन की खराबी से जैसे प्रोटीन और चर्बी की कमी और कार्बोहाइड्रेट की ज्यादाती से, रिकेट सूखा हो जाता है। स्टार्च की कमी भी एक कारण है। अच्छे प्रकार की चर्बी की कमी प्रोटीन की कमी की अपेक्षा अधिक जरूरी है। शक्कर की अधिकता से जो हानि होती है उसका कारण चर्बी के पाचन में शक्कर के कारण बाधा पड़ना हो सकता है। यह कहा जा चुका है कि चर्बी में पाये जाने वाले विटामिन-ए और -डी चर्बी के पाचन को बढ़ा देते हैं। अतएव जब भोजन में इन विटामिनों का अभाव होता है तब चर्बीका पाचन घट जाता है और मिठुआ या सूखा रोग हो जाने की सम्भावना रहती है।

डा० धर और सहयोगियों ने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि वायु से या ओषजन से भिन्न भिन्न पदार्थों का जो ओषदीकरण होता है वह शक्करकी उपस्थितिमें कम हो जाता है। शक्कर स्वयं उन पदार्थों की उपस्थिति में ओषदीकृत हो जाती है। चर्बी का भी ओषदीकरण शक्कर के साथ कम होजाता है। अतएव जब शक्कर वाले पदार्थ बच्चों को बहुतायत से दिये जाते हैं तो उनके शरीर में चर्बीले पदार्थ ठीक से नहीं पचते; विशेषतः तब और भी जब विटैमिन-ए और -डी भी भोजन में अनुपस्थित रहते हों। ऐसी अवस्था में बच्चों का मिठुआ या सूखा होने की सम्भावना रहती है।

चिट्टेनडेन और अण्डरहिल^१ ने कुत्तों को केवल शाक खिला कर रखने पर अनुभव किया कि इस अवस्था में कुत्ते पल नहीं सके। जब उनका क्रैकर्स मटर और विनोला कई महीने तक दिया गया तब उनकी अवस्था ऐसी हो गयी जिसकी तुलना ये लोग मनुष्य के पेलाग्रा से करते हैं। कुत्तों का मुख सूज गया, विरेचन हो गया और उनके चर्म की अवस्था पेलाग्रा से पीड़ित रोगियों के चर्म की भांति हो गयी।

ऊपर के कथनानुसार हम यह निर्णय कर सकते हैं कि भोजन से आवश्यक पदार्थ की कमी के कारण उत्पन्न हुये सब रोगों का जैसे स्कर्वी, बेरी-बेरी, पेलाग्रा, मिठुआ इत्यादि का संबन्ध पेट और आँत के विकार से है। लेकिन मेक-केरीसन की खोजों

से हमको यह पता लगता है कि पेट के विकार विटैमिन के अभाव से होते हैं। इस बातसे धर साहेब के मतकी पुष्टि होती है कि भोजन से सम्बन्ध रखने वाले रोग भोजन में विटैमिन, ग्रन्थियों के अन्तःस्राव और पाचन शक्ति को बढ़ाने वाली चीजों के न रहने पर और ठीक ठीक पाचन न होने से होते हैं। धर साहेब ने यह सिद्ध किया है कि थायरायड ग्रन्थि से जो रस निकलता है उसका कार्य विटैमिन-ए और -डी के कार्य के समान है। थायरायड ग्रन्थि के कारण सब पदार्थों का पाचन और मुख्यतः चर्बी का पाचन बहुत तीव्र हो जाता है। बालकों के शरार और मस्तिष्क के बढ़ने में थायरायड विशेष लाभकारी है। ओस्ट्रिओ-मलेशिया, मृग्वा, ओस्ट्रिओ-माइलिटिस आर निर्बलता के कारण उत्पन्न हुये रोगों में भी इस ग्रन्थि के रस से लाभ होता है। बहुत से नेत्र-रोगों का कारण इस ग्रन्थि के रस का न्यूनता का होना कहा जाता है। यह भली भाँति मालूम है कि विटैमिन-ए और -डी शरीर की संवृद्धि में, और मृग्वा, ओस्ट्रिओ-मलेशिया, ओस्ट्रिओ-माइलिटिस, नेत्र-रोग जैसे रतौंधी, कॅरेटोमलेशिया इत्यादि को रोकने में उसी प्रकार लाभकर हैं जैसे थायरायड ग्रन्थि का रस। इससे यह सिद्ध हुआ कि विटैमिन-ए और-डी और थायरायड का रस चर्बी के पाचन या ओषदीकरण को बढ़ा सकते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि कुमारी हौजसन^१ ने इन रोगों के बढ़ जाने पर पेट में खट्टेपन का आरम्भ होना पाया

है। प्रिटचर्ड^१ का यह विश्वास था कि सूखा का कारण शरीर में अम्लता का बढ़ जाना है और बर्गस और ओसमन^२ ने तीन ऐसे रोगी बताये थे जिनके पेट में अम्लता बहुत था।

यह पूर्व ही कहा जा चुका है कि पेट और जिह्वा के नामूर और परनिशस एनीमिया का सम्बन्ध, विटेमिन के समान उत्तेजक पदार्थों के अभाव के कारण भोजन की पाचन व परिपक्व क्रिया के ठीक ठीक न होने से है, और इसी लिये डा० धर ने इन दोनों रोगों को भी उसी श्रेणी में रखा है जिनमें आवश्यक पदार्थों के अभाव के कारण उत्पन्न हुये अन्य रोग माने जाते हैं।

ल्यूकेमिया रक्त का एक विचित्र रोग है जिसकी उत्पत्ति के कारण का कोई पता नहीं है। इसका मुख्य लक्षण रक्तमें श्वेताणुओं का बढ़ जाना है। इसके लक्षण अप्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न होते हैं। तिल्ली के बढ़ जाने से उदर का बढ़ता जाना प्रथम प्रतीत होता है और फिर पीलापन, धड़कन, सांस की कमी इत्यादि जो परनिशस एनीमिया के लक्षण हैं उत्पन्न होने लगते हैं। भीतरी अवयवों से रक्त-प्रवाह होने की प्रवृत्ति रहती है और नेत्र से रक्त-प्रवाह होता है। आंतों के विकार, वमनेच्छा, वमन और अतिसार बार बार होते हैं। परनिशस एनीमिया की भाँति अनियमित पायरेक्सिया

1. Pritchard

2. Burgess and Osman

देखी गयी है और प्रायः रात्रि में ज्वर 103° हो जाता है परनिशस एनीमिया की भांति इस की भी चिकित्सा में सबसे अच्छा फल संखिया और सोडियम केकोडिलेट के सेवन से होता है। हौजकिन के रोग का जिसकी प्रकृति ल्यूकेमिया सी है, मुख्य लक्षण लिम्फेटिक ग्रन्थियों का बढ़जाना और परनिशस एनीमिया के कुछ लक्षणों का उत्पन्न हो जाना है। इन दोनों रोगों का कारण अनिश्चित ही है। ल्यूकेमिया को भांति इसमें भी रक्त प्रवाह की सम्भावना रहती है और ज्वर बहुधा $100-103^{\circ}$ तक बढ़ जाता है। इस रोग में भी संखिया लाभदायक है। परनिशस एनीमिया की भांति, दूध, और इसके अन्य पदार्थ, अंडा, अखनी इत्यादि ल्यूकेमिया में भी दिये जाते हैं। ग्रौइट्ज़ ने दूध और शाक का भोजन देना बताया है। डा० धर के मत से ल्यूकेमिया और हौजकिन रोग विटेमिन-बी और -सी के अभाव के कारण हो जाते हैं।

डा० धर ने यह संकेत किया है कि एड्रीनल रस का कार्य मज्जिक पदार्थों के पाचन को तीव्र कर देना है। एड्रीनल रस के मुख्य अंश एपीनेफ्रिन का कार्य पाचन को और शरीर के तापको बढ़ाना है। इसके अतिरिक्त विटेमिन-ए और-डी की भांति एपीनेफ्रिन सूखा और ओस्टिओ-मलेशिया की चिकित्सा में भी लाभकारी सिद्ध हुआ है। वास्तव में

ओम्बिट्रो मलेशिया के कुछ लोग एड्डीनलकी विशेष चेष्टा के कारण होना समझते हैं ।

कुछ अन्वेषक एडीसन-रोग को भी एड्डीनल ग्रन्थि की विशेष चेष्टा के कारण उत्पन्न हुआ मानते हैं । यह राग धीरे धीरे उत्पन्न होता है । दुबलता, विराग विरेचन, मलावरोध इत्यादि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं । इस रोग में चिकित्सा असफल होती है । एड्डीनल ग्रन्थि का रस बहुत आशातीत है और बहुत से चिकित्सकों ने इससे रोगमें लाभ भी पाया है । एड्डीनल ग्रन्थि निकाल देने से दुर्बलता, मानसिक विराग, हृदय की कमजोरी, सांस की कमी इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं । साथ साथ वमन और विरेचन भी होता है । ऊपर कहे हुये सब लक्षण एडीसन-रोग में भी पाये जाते हैं । यह भी कहा गया है कि एड्डीनल का रस मज्जिक पदार्थों के पाचन को उत्तेजित कर देता है और इस बात में विटेमिन-ए और डी के समान है । जिस प्रकार एड्डीनल का रस एडीसन-रोग की एक ओपधि है, उसी प्रकार विटेमिन-ए और-डी भी इस रोग में लाभकारी होना चाहिये । डा० धर वैद्य लोगों को इस रोग में उन पदार्थों को जिनमें विटेमिन-ए और-डी की मात्रा अधिक है प्रयोग में लाने के लिये आग्रह करते हैं । फंक और फॉन शोनबोर्न^१ ने यह देखा कि कबूतर के खून में मधुकोजन की मात्रा १.१७% और चीनी की मात्रा ०.१% रहती है, पर जब उनको विटेमिन-रहित भोजन दिया जाता है

तो मधुकोजन का मात्रा ०.४८ % और चीनी की मात्रा ०.१५ % हो जाती है। जिस कबूतर को चीनी अधिक खिलायी गयी, उसके रक्त में मधुकोजन ४.५ % और चीनी ०.१५ % मिली। नशास्ता की अधिकता से रक्त में केवल ०.२३ % चीनी मिली। अंतिम प्रयोग में विटैमिन-बो के मिता देने से अच्छे कबूतरों की सी अवस्था हो जाती है। फंक ने इन परिणामों को कई बार दुहराया था। कबूतरों की बेरी-बेरी में जो 'मधुकोमेहता' पायी जाती है वह अभी तक मनुष्यों की बेरी-बेरी में नहीं पायी गयी। इसके अतिरिक्त फंक ने उन पदार्थों के प्रभाव का भी अनुशीलन किया जिनका प्रभाव शर्करामय पदार्थों के पाचन पर भली प्रकार अवगत है। उनमें से द्राक्षशर्करा, फ्लोरिजिन, एड्रीनेलिन, पिट्यूट्रिन, थायरायड, और पैराथायरायड का जो प्रभाव कबूतरों की बेरीबेरी पर पड़ता है उसकी खोज हृष्टपुष्ट और चावल खिलाये हुये, कबूतरों पर की गयी थी। थायरायड और एड्रीनेलिन दोनों से कबूतरों की आयु घट गयी। पैराथायरायड का प्रभाव कुछ भिन्न था। थायरायड से यकृति में रक्त-शर्करा बढ़ जाती है। परन्तु पैरा-थायरायड से मधुकोजन और अमिनोअम्ल की मात्रा बढ़ गयी और रक्त-शर्करा पर कोई प्रभाव न पड़ा। थायरायड और एड्रीनेलिन से कबूतरों में जो मधुकोमेहता हो जाती है, उसका वर्णन पहले किया जा चुका है। कबूतरों की बेरीबेरी का मधुकोमेहता से समन्वय मेक-केरीसन के इस निरीक्षण से किया जा

सकता है। उन्होंने यह देखा कि एवियन बेरीबेरी में 'सुप्रा-रीनल बहुत बढ़ जाता है और अतः एड्रीनल की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। यह स्पष्ट हो गया कि बेरी-बेरी में शक्कर का पाचन ठीक प्रकार नहीं होता और फल यह होता है कि जीव को प्रोटीन और चर्बी पर निर्भर रहना पड़ता है और एड्रीनेलिन जो चर्बी के पाचन को तीव्र करती है बढ़ जाती है।

संक्रामक-ड्रोप्सी का मुख्य लक्षण 'एनासरका'^१ का अकस्मान् पैदा हो जाना है। इसके होने से पूर्व ज्वर, विरेचन, वमन इत्यादि हो जाते हैं और कभी कभी अंतरा, एनीमिया और उदर दोष हो जाते हैं। ओडीमा इसके प्रकोप का मुख्य चिह्न है। यह रोग भो और रोगों की भांति भोजन सम्बन्धी रोग है और विटेमिन बी के अभाव से हो जाता है। इन रोगों में भो पैक्रियेटिक रस का प्रभाव लाभकर होना चाहिये।

पेलाग्रा, बेरीबेरी, एपीडेमिक ड्रोप्सी, स्फू, पेचिश बच्चों का पित्त संबन्धी सिरोमिस, पाइनस पहाड़ी बेरी-बेरी, संक्रामक विरेचन इत्यादि रोग उष्ण कटिवन्ध प्रदेश ड्रोप्सी और के रोग माने जाते हैं। हम भली भांति पैक्रियेटिक स्राव जानते हैं कि बेरी-बेरी और पेलाग्रा भोजन सम्बन्धी रोग हैं। इसका भली भांति निर्णय हो चुका है कि बेरीबेरी भोजन में विटेमिन-बी के अभाव के कारण होती है। पूर्व के विवरण में यह

डाक्टर धर ने यह विचार प्रकट किया है कि पेलाग्रा के लक्षण स्कर्वी और अनीमिया से मिलते-जुलते हैं। गोल्डबर्जर^१ और उनके सहायकों के अन्वेषणों से यह पता चला है कि बहुत सम्भव है कि यह रोग शरीर में भोजन की कमी के कारण से होता हो। वोग्टलिन^२ की यह सम्मति है कि यह रोग कई आवश्यक खाद्य पदार्थों की कमी के कारण होता है।

पेलाग्रा के आरम्भ में दुर्बलता और खिन्नता उत्पन्न होती है। रोगी की दृष्टि कम हो जाती है। शिर दर्द, चक्कर, कमर व जोड़ों में दर्द उत्पन्न हो जाता है। रोगी चिड़चिड़ा निबुद्धि और उदास हो जाता है। प्रथम जिह्वा पर एक परत पड़ जाती है। फिर जिह्वा पर घाव हो जाता है। मसूढ़े फूल आते हैं और उनमें से रक्त आने लगता है। वमन हो जाता है। क्षुधा बिगड़ जाती है। पेट में दर्द पैदा हो जाता है। यह कुल लक्षण स्कर्वी और अनीमिया के लक्षणों से मिलते-जुलते हैं। इसके अतिरिक्त जैसा वेडर ने कहा है, स्कर्वी और पेलाग्रा में आंतों के घाव एक समान होते हैं। विरेचन, आंत की सूजन व घाव, और भिल्लियों से रक्त प्रवाह स्कर्वी, परनीशस अनीमिया और पेलाग्रा तीनों में होते हैं। इसके अतिरिक्त नाड़ी विषयक लक्षण स्कर्वी और पेलाग्रा में एक ही समान होते हैं।

-
1. Goldberger
 2. Voegtlin
 3. Vedder

पेलाग्रा और बेरी-बेरी में कुछ समानता है। यह कहा जा चुका है कि बेरी-बेरी में नाड़ियों के कुछ चालक कोष्ठों का विनाश हो जाता है। रोबर्ट्स^१ ने पेलाग्रा में रीढ़ की नस के चालक कोष्ठों के विनाश का वर्णन किया है। इससे यह पता चलता है कि पेलाग्रा और बेरी-बेरी में भी कुछ समानता है और यह सम्भव है कि यह रोग स्कर्वी और बेरी-बेरी के मेल से होता हो। इस कारण डा० धर की यह सम्मति है कि पेलाग्रा विटैमिन-बी और -सी के अभाव के कारण होता है। उनका वैद्यों से अनुरोध है कि रोग के आरम्भ में सूर्य के प्रकाश से चिकित्सा करने का यत्न करें। भारत वर्ष के कई प्रदेशों में निर्धन व्यक्ति मक्के पर ही निर्वाह करते हैं और निकृष्ट प्रोटीन खाते हैं। उनके भोजन में विटैमिनों का अभाव रहता है। फिर भी पेलाग्रा का रोग कम होता है। उत्तरी बिहार में कुछ रोगी मिले थे। इसका कारण यह है कि इस देश में सूर्य का प्रकाश बहुत है जो पेलाग्रा को होने से रोकता है। कोई कोई पेलाग्रा को चर्म का 'सूर्य कोप' मानते हैं। पेलाग्रा का पुराना नाम सूर्य रोग था, पर हम लोगों का यह विश्वास है कि सूर्य के प्रकाश से पेलाग्रा में लाभ होगा, क्योंकि प्रकाश से पाचन बढ़ जाता है। इटली और अन्य देशों में पेलाग्रा वसन्त ऋतु के आरम्भ में होता है। डा० धर ने यह कहा है कि इसका कारण शीतकाल के भोजन में विटैमिन का कम हो जाना, और सूर्य के प्रकाश का घट जाना है।

इसमें सहायक होते हैं। जिन घरों में लोग अंखुयेदार चने या अन्य नाज खाया करते थे, उनमें किसी को रोग नहीं हुआ। यह एक विचित्र बात है कि भारतवर्ष के श्रमजीवी जो कच्ची चीजें जैसे—प्याज, मूली, लौकी, चना, मक्का इत्यादि खाते हैं, उनको भोजन सम्बन्धी रोग, दांत के रोग इत्यादि उतने नहीं होते, जितने उन मध्यम श्रेणी के लोगों को होते हैं, जिनको दफ़्तर आदि में नौकरी करनी पड़ती है, और जिन्हें प्रकाश कम मिलता है। इसके अतिरिक्त इन लोगों को अंडा, मछली, मांस, मक्खन, दूध इत्यादि सुन्दर भोजन नहीं मिल सकते। श्रमजीवियों की भांति यह लोग कच्चा भोजन नहीं कर सकते। फलतः इनको सदैव पाचन और भोजन सम्बन्धी रोग हुआ करते हैं।

ऐपेल्टन¹ के अनुसार लैब्राडर में लोग सदा बरीबेरी, आंडीमा, म्कर्वी, रतौंधी आदि से ग्रसित रहते हैं, क्योंकि वे निर्धन हैं और अच्छा भोजन नहीं पा सकते। इसके अतिरिक्त लैब्राडोर में सूर्य का प्रकाश भी कम होता है।

पेलाग्रा उष्ण कटिबन्ध का रोग है। इसकी उत्पत्ति के विषय में बहुत वाद-विवाद हो चुका है।

पेलाग्रा और अन्वेषकों का एक समूह कहता है कि यह विटैमिन-बी और-सी एक छूत वाला संक्रामक रोग है। परन्तु जब भोजन के विकार से शरीर निर्बल हो जाता है, तभी इस रोग से लोग ग्रसित होते हैं। दूसरे

लोग यह कहते हैं कि यह रोग स्कर्वी और बेरीबेरी की भांति विटैमिन के अभाव से होता है। यह ठीक-ठीक नहीं मालूम कि किस विटैमिन के अभाव से यह रोग हो जाता है। यह इङ्गित किया गया है कि पेलाग्रा मक्के के प्रोटीन ज़ाइन में ट्रिप्टोफैन और लायसिन के अभाव के कारण होता है। पहली वस्तु के पाचन पर प्रभाव विलकौक और होपकिन्स^१ ने दर्शाया था और दूसरे का ओसबोर्न और मैडल^२ ने। दूध, अंडा, पनीर या मांस के अधिक मात्रा में खाने से पेलाग्रा का प्रकोप सदा कम होगया है परन्तु यह पता नहीं कि लाभ इन पदार्थों में स्थित ट्रिप्टोफैन से हुआ था या किसी और पदार्थ से। कुमारी चिक और कुमारी ह्यूम^३ ने उन प्रयोगों का वर्णन किया है जिनमें उन्होंने बन्दरों को ऐसा भोजन दिया जिसमें प्रोटीन तो एकमात्र 'ज़ाइन'^४ था परन्तु सभी विटैमिन बहुत थे। इनमें पेलाग्रा से मिलते-जुलते लक्षण उत्पन्न हो गये। जब एक को छैना (केसीनोजन) दिया गया तो सब लक्षण दूर हो गये पर फिर भी यह पता न चला कि ट्रिप्टोफैन से लाभ हुआ या किसी और पदार्थ से। इस अमिनो-अम्ल से लाभ तो हुआ है परन्तु रोग का निवारण नहीं हो सका।

1. Willcock and Hopkins

2. Osborne and Mendel

3. Miss Chick and Miss Hume

4. Zain

कहा जा चुका है कि विटामिन-बी शक्कर के पाचन को उत्तेजित करती है। इसके अतिरिक्त यह भली भांति ज्ञात है कि पैक्रियेटिक रस मधुमेह की चिकित्सा में बहुत लाभकारी है। अतएव यह मत प्रकाशित किया गया है कि विटामिन-बी की भांति पैक्रियेटिक रस भी शक्कर के पाचन को उत्तेजित करता है। फिडले साहेब का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि बेरीबेरी शक्कर के पाचन के दूषित हो जाने से होती है। अतएव बेरीबेरी की चिकित्सा में इनसुलिन से लाभ होने की सम्भावना पायी जाती है। इसके अतिरिक्त विटामिन-बी से परिपूर्ण भोजन बहुमूत्र रोग में लाभकारी होना चाहिये। यह ध्यान में रखना चाहिये कि बहुमूत्र रोग उष्ण कटिवन्ध में बहुतायत से होता है। मुख्यतः उन लोगों को होता है जिनको बहुत बैठा रहना पड़ता है। उष्ण-कटिवन्ध के अधिकतर प्रदेश निर्धन हैं और जीवन निर्वाह के लिये वहाँ के निवासी सस्ते शक्कर वाले पदार्थों का उपयोग करते हैं। अगर भोजन में विटामिन-बी का अभाव हो तो या तो बेरीबेरी या मधुमेह हो जाता है। यह न भूल जाना चाहिये कि जब शक्कर वाले पदार्थ बहुतायत से उपयोग में लाये जाते हैं तो पैक्रियस रस की अधिक खपत होती है और इस कारण बहुमूत्र रोग होने की संभावना होगी। यह उचित है कि मधुमेह रोग भी बेरीबेरी की भांति उष्ण कटिवन्ध का रोग माना जाय।

यद्यपि मेगनस लेवी^१ जईके आटे (ओटमील) से मधुमेह-

रोधक वस्तु निकालने में असफल रहा, बोरुट्टो^१ को पता लगा कि शरीर से अलग किये हुये हृदय में मधुकोजन का विभाजित होना पैक्रियस के रस, यीस्ट और उसके रस के कारण रुक जाता है और जो या जई का अर्क मनुष्यों और कुत्तों के मूत्र में चीनी की मात्रा कम कर देता है। भारतवर्ष में भोजन में चीनी की मात्रा अधिक होनेसे ऐसी अवस्था हो जाती है जिससे बहुमूत्र रोग हो जाता है। यह अवस्था उस मधुमेह से मिलती जुलती है जिसे फंक^२ ने कबूतर के बेरी-बेरी रोग में भी देखा था।

डा० धर ने यह मत प्रकाशित किया है कि विटामिन-बी के अभाव से पाचन-क्रिया हीन हो जायगी और अम्लता बढ़ जायगी और इस अम्लता के कारण शरीर में पानी बहुतायत से जमा होने लगेगा। यह भलीभांति मालूम है कि आर्द्र बेरी-बेरी में शरीर के कई भागों में पानी रुका रहता है और वह भाग सूज जाता है। अतएव यह प्रतीत होता है कि बेरीबेरी में सूजन अम्लता के कारण होती है। अतः क्षार-पदार्थ द्वारा चिकित्सा करने से लाभ होगा। यह बता देना चाहिये कि बेरीबेरी चावल खानेवाले मनुष्यों को अधिक होती है।

संक्रामक ड्रोप्सी के जो प्रकोप हमारे संयुक्तप्रांत और बंगदेश में हुये हैं, उनके देखने से यह पता चला है कि दूषित भोजन और विटामिन के अभाव से ही यह रोग होता है। तरी और गंदगी

1. Boruttau

2. Funk

स्पृ या साइलोसिस आंत के फूलने का रोग है जिसका चिह्न जिह्वा पर घाव का होना और पीला एवं स्पू और विटैमिन बी-और-सी भागदार मल का होना है। चीन के डाक्टर 'मिलर' की यह धारणा है कि यह रोग सुरक्षित और डिब्बों में बन्द मांस के खाने से होता है। इस रोग में जिह्वा पर फलक पड़ जाते हैं, जो आप ही आप लुप्त हो जाते हैं। कुछ दिनों में जिह्वा की ऊपरी भिल्ली हट जाती है, जिह्वा फट जाती है, मसूढ़े फूल जाते हैं। यह लक्षण पेलाग्रा, परनीशस अनीमिया और स्कर्वी के लक्षणों के समान ही हैं।

इस रोग में दूध, फल, अखनी और मांस के खिलाने से लाभ हुआ है। डाक्टर धर ने यह मत प्रकाशित किया है कि उष्ण कटिबन्ध का यह रोग अनीमिया की भांति भोजन में विटैमिन-बी और सी-के अभाव से होता है।

हम लोगों ने पहले ही कह दिया है कि उदर दाप भोजन में विटैमिन के अभाव से होता है। पेचिश विटैमिन की कमी उष्ण कटिबन्ध प्रदेशों में बहुत होती है और उदर दाप जहां जनता को अच्छा और पूरा भोजन नहीं मिलता। बहुधा यह रोग भोजन में विटैमिन की कमी के कारण होता है। यह कहना ठीक

है कि इसकी उत्पत्ति कीटाणुओं से और कभी-कभी कीटाणु और विटामिन की कमी दोनों से होती है ।

पर्वत पर का विरेचन पेट को ठंडक लग जाने से होता है । इसमें पतला, पीला और भागदार मल प्रातःकाल होता है । इसमें और स्त्रू में यह अंतर है कि इसमें मुख में घाव नहीं होते । स्त्रू की तरह इसमें भी दूध से लाभ होता है । यह संभव है कि इस रोग का कारण विटामिनों का अभाव हो ।

उष्ण कटिबन्ध में अकाल में लोग ऐसे निकृष्ट पदार्थों को खाते हैं, जिनको सामान्य समयों में वे कभी न खाते । ऐसे समय में उदर-दोष बहुत होता है, चाहे कितना ही कम भोजन किया जाय ।

भारतवर्ष में बहुत सी जगहों पर निर्धन लोग मक्का खाते हैं । इन प्रदेशों में सदा पेचिश, विरेचन और अन्य उदर-दोषों का प्रकोप रहता है । फ्रांस की राज्यक्रांति के समय भोजन का अभाव हो गया था और हड्डी से निकाली जिलेटिन का भोजन चिकित्सालयों में और निर्धनों को दिया जाता था । कुछ ही काल में यह प्रतीत होगया कि इसके खाने से अपच, चक्कर, विरेचन आदि रोग हो जाते हैं और प्यास बहुत लगती है । जिन कुत्तों को जिलेटिन का भोजन दिया गया, उनको तीव्र विरेचन होगया । गत यूरोपीय महासमर में बहुत से प्रदेशों में जहां निकृष्ट और कम भोजन मिलता था, ओडीमा और उदर दोष बहुत प्रचलित थे ।

हवा के बाद बहुत अच्छे रहते हैं और जाड़े के अँधेरे के बाद वसंत में अन्यमनस्क रहते हैं। यह सम्भव है कि जाड़े के भोजनीय पदार्थों में विटामिन कम रहते हों और प्रकाश भी कम मिलता है जिसके कारण वसंत के आरम्भ में शिथिलता ज्ञात होती है। अमरीका के आदि निवासियों का वसन्त के आरम्भ में शिथिल होजाना भी इसी कारण से हो सकता है।

(हुल्डशिन्सकी^१ ने टेटेनी रोग में सूर्य के प्रकाश से चिकित्सा की है और सूखा अच्छा करने में भी सफलता पायी है। हार्ट, स्टीनबौक, लेपकोव्सकी और हालपिन^२ ने मुर्गी के बच्चों के बढ़ने पर प्रकाश का लाभयुक्त प्रभाव देखा है। हग्स^३ ने यह अनुभव किया कि जब मुर्गी के बच्चों को उचित भोजन तो दिया गया और किन्तु शीशों से छूने हुये प्रकाश में उन्हें रक्खा गया तो उनमें सूखा रोग के लक्षण दिखाई देने लगे। वे बच्चे जिनको वैसा ही भोजन और सूर्य का प्रकाश प्रतिदिन कुछ घंटों तक मिला, अच्छे हो गये। क्रैमर और ड्रू^४ ने चूहों को विटामिन-ए रहित भोजन देकर और अँधेरे में रख कर यह देखा कि उन चूहों की अपेक्षा जिनको वैसाही भोजन देकर प्रकाश में रक्खा गया था इन चूहों में रक्त की मात्रा कम हो गई। पारदवाष्प लैम्पके प्रकाश में रखने से रक्त की मात्रा पूरी हो गई।

1. Huldschinsky

2. Hart, Steenbock, Lepkóvsky and Halpin

3. Hughs

4. Cramer and Drew

इन परिणामों से यह प्रतीत होता है कि शरीर की वृद्धि के लिये सूर्य का प्रकाश और कृत्रिम प्रकाश भी बहुत उपकारी है और सूखा रोगका होना इससे रुक सकता है । अतएव प्रकाश का वही कार्य है जो विटामिन-ए और-डी का है ।)

प्रकाश द्वारा शर्करामय पदार्थों की अपेक्षा मज्जिक पदार्थों का ओषदीकरण अधिक बढ़ जाता है । अतएव प्रकाश सूखा रोग में बहुत लाभदायक है यद्यपि बेरी-बेरी, मधुमेह और स्क्वी में इतना लाभदायक नहीं है । परंतु जैसा हमने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि प्रकाश में वायु सं भाजन के तीनों भाग, शर्करा, चर्बी और प्रोटीन, अधिक ओषदीकृत होते हैं, अतः हमारी यह धारणा है कि प्रकाश बेरीबेरी, एपीडेमिक ड्राप्सी स्क्वी, पेलाग्रा रोग, नासूर, मधुमेह, गठिया आदि अन्य रोगों में भी लाभकारी सिद्ध होगा ।

(प्रयाग की प्रयोगशाला में कबूतरों पर किये गये प्रयोगों से यह प्रतीत होता है कि इन चिड़ियों को जब रंगूनी चावल २४ दिन तक दिया गया और प्रकाश मिला तो पोलीन्यूराइटिस और नेत्र रोग नहीं हुये । चावल के साथ शाक पोलीन्यूराइटिस और नेत्र रोग को रोकने में प्रकाश से कम हितकारी सिद्ध हुये । कलाद्रु लोहिक उदौषिद और लोहिक हरिद का प्रभाव शाक के बराबर ही है ।)

इन सब बातों से लेखक को यह प्रतीत होता है कि विटामिन, अन्तःग्रन्थियों का रसस्राव और प्रकाश तीनों पाचन में एकही

कारण अबतक एक रहस्य ही है। दूध जिसमें खटिकम् है दिया जाता है, मुख्यतः जब रक्त-प्रवाह अधिक होता हो।

बहुत सम्भव है कि हेमोफिलिया और परपुरा दोनों विटामिन-सी के अभाव से होते हों।

हाल ही में हेमोफिलिया में थायरोयड के उपयोग से लाभ हुआ है।

उष्ण कटिबन्ध प्रदेशों के निर्धनों को जो गन्दी जगहों में रहते हैं, हो जानेवाले नाना प्रकार के उष्ण कटिबन्ध के घाव रहस्यमय हैं। जीर्ण व्रण उचित पंकिल व्रण सावधानी न होने से हो जाते हैं। शीघ्रता से बढ़ने वाले घावों से मृत्यु हो जाती है।

किन्तु आरम्भ में पता लग जाने पर शल्य-चिकित्सा द्वारा उपचार किया जा सकता है।

धीरे-धीरे बढ़नेवाले घावों में कुछ कीटाणु-नाशक द्रव्यों से लाभ हुआ है। जब घाव बढ़ जाता है तब चर्म काट देने से लाभ होता है। केवल अच्छा भोजन और पुष्ट पदार्थ ही इसकी दवा है। यह प्रतीत होता है कि विटामिन के अभाव के कारण उचित पोषण न होने से और अच्छा भोजन न मिलने से शरीर पर सर्व कीटाणुओं का आक्रमण होने लगता है।

यह भली भांति निश्चित हो चुका है कि मिठुआ रोग सूर्य के प्रकाश से दूर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उष्ण

कटिबंध के प्रदेशों में प्रायः यह रोग होता भी नहीं है यद्यपि इन प्रदेशों में गरीब बालकों को उचित और प्रकाश और पाचन पूरा भोजन नहीं मिलता। यह देखा गया सम्बन्धी व्याख्या है कि परनीशस एतीभिया की भी चिकित्सा प्रकाश से सफलता के साथ की जा सकती है। यह भी प्रतीत होता है कि प्रकाश से बेरी-बेरी, स्कर्वी और पेलागा आदि अन्य रोगों में जो कि विटैमिन के अभाव से होते हैं, लाभ होगा। भारत और चीन ऐसे उष्ण कटिबंध के प्रदेशों में कुछ दीनता के कारण और कुछ शिक्षा के अभाव के कारण बहुधा लोगों के भोजन में विटैमिन उचित अंश में नहीं रहते। परिणाम-स्वरूप स्कर्वी, बेरी-बेरी, और पेलागा, और विटैमिनों के अभाव से होने वाले अन्य रोग बहुतायत से हो जाते हैं परंतु यह निश्चय है कि यदि यहाँ सूर्य का प्रकाश जो इस कमी को पूरा करने वाला है, न होता तो इनका प्रकोप और अधिक होता। हमारा यह अनुरोध है कि वैद्यगण पेलागा, यक्ष्मा और अन्य रोगों की चिकित्सा में सूर्य के प्रकाश का जितना अधिक प्रयोग करें उतना ही अच्छा है।

फिनलैंड के एरष्ट्रोम साहब का कथन है कि “हमलोग पत-भङ्ग की ऋतु में (औटममें) गीष्म ऋतु के प्रकाश और खुली

इन परिणामों से यह प्रतीत होता है कि भोजन के गुण दोषों का स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यह संभव है कि जिलेटिन, मक्का आदि का पाचन ठीक से नहीं होता हो, जिससे आंतों में जलन होती है और दायु बढ़ती है, और उदर-दोष हो जाता है।

भारतवर्ष के बड़े-बड़े नगरों में एक वर्ष से छोटे बच्चों को एक प्रकार का रोग हो जाता है, शिशुओं में पित्त-यकृत- जिसका सम्बन्ध यकृत से है। इस रोग में रोग, पोनीस और मतली, वमन, ह्रारत, मल का न होना, विटमिनों का अभाव चिड़-चिड़ापन, प्यास, शिथिलता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। परीक्षा करने पर यकृति बड़ी हुई मिलती है। दस्त पीले और मूत्र काला आता है। प्रयाग में कई बच्चे भयंकर रोगी मिले, जो विटमिन वाले भोजन देने से अच्छे हो गये। भारतवर्ष में बच्चों के उबाला दूध पिलाया जाता है, जिससे विटमिन की मात्रा कम हो जाती है। परिणाम-स्वरूप, उनको ऐसा भोजन मिलता है, जिसमें विटमिन-बी की मात्रा कम होती है और फल यह होता है कि विटमिन की कमी के कारण यह रोग हो जाया करता है।

यूनानी द्वीप समूह के गंदे और निर्धन स्पीज़िया और हाइड्रा टापू में पोनीस नाम का एक रोग होता है, जिसका वर्णन कैरे-मिटसाज़ और स्टेफोनोस¹ ने किया है। पोनीस² भारत के

1. Karamitsas and Stephonos

2. Fonos

शिशुओं के पित्त-यकृति रोग से मिलता-जुलता है। इसी की भांति पानोस रोग से भी बच्चे ही प्रसित होते हैं। आरम्भ में शिथिलता आ जाती है और चर्म पीला पड़ जाता है, जो गहरा पड़ जाता है। ज्वर हो जाता है और तिल्ली बढ़ जाती है। बदहजमी, विरेचन, पेंचिश आदि भी उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ दिनों पीछे ओडीमा हो जाता है और रक्त-प्रवाह मुख्यतः मसूढ़ों से होने लगता है। किसी-किसी रोगी को फोड़ा और सरजन हो जाता है। बहुत सम्भव है कि इस रोग की उत्पत्ति विटैमिन-बी के अभाव से हो।

शरीर में एक प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाने से चर्म और तिल्ली से रक्त-प्रवाह होने लगता है। इस रोग को परपुरा¹ कहते हैं। कभी-कभी कुल भिल्लियों से रक्त-प्रवाह होने लगता है और रोग के प्राण-घातक हो जाने की सम्भावना रहती है। मूत्र-पिण्ड, थैली, अँतड़ी, प्रदर, फुफ्फुस (रक्तपिण्ड) से रक्त-प्रवाह होने लगता है और रक्त की कमी के कारण मृत्यु की सम्भावना रहती है।

हेमोफिलिया² रोग पैतृक या स्वाभाविक रोग है, जिसमें सहसा रक्त-प्रवाह होने की सम्भावना रहती है। इस रोग का

1. Furpura

2 Haemophilia

कार्य करते हैं और उचित अवस्था में एक दूसरे के स्थानापन्न हो सकते हैं। विकास, वृद्धि और प्रजनन शक्ति के लिये इन तीनों में से कम से कम एक का होना अत्यंत आवश्यक है। इस तत्त्व के समझ लेने पर हम यह जान सकेंगे कि सूर्य का प्रकाश हमारे लिये कितना लाभकर है। समस्त प्राणियों के जीवन का यह आधार है। प्रकृति की यह सर्वोत्कृष्ट विभूतियों में से है। इसका उपभोग करना सबका जन्मसिद्ध अधिकार है।

کتاب خانہ

جامعہ عربیہ اسلامیہ

- ۱۔ اراکین مجلس اعلیٰ مجلس فقہاء مجلس نظامی
- ۲۔ اساتذہ جامعہ عثمانیہ و کویہ جات و مدرسہ دارالعلوم
- ۳۔ علیائین جسر شدہ دو کتابیں بی اسے اور اشرفیہ
- ۴۔ دست مقررہ پر کتابیں وہیں وہوں و طلبہ نجیب
- ۵۔ تشریح مرقع کتابیں اور چاری کی جائیگی مگر عرض
- ۶۔ کتابیں کم یا خراب ہو جائیں تو مستحکم پروندہ داری
- ۷۔ کتابوں پرچی رقم کا نشان سکایا یا نہیں سے
- ۸۔ قلمی نسخے اور حوالے کی کتابیں جاری ہو جائیں

